गुरुशब्द सुमन

* अनुक्रमणिका *

पेज नं.

खण्ड १

	मंगलाचरण	१
१.	त्रिकाल एवं विदेह क्षेत्र तीर्थंकर	२
२.	गोम्मटेस थुदि (प्राकृत)	६
३.	दर्शन पाठ (संस्कृत सार्थ)	७
४.	मन्दालसा-स्तोत्र	१०
५.	दृष्टाष्टकर-स्तोत्र	१२
६.	अद्याष्टक-स्तोत्र	१६
७.	परमानन्द-स्तोत्र	१८
८.	वीतराग-स्तोत्र	२१
९.	सुप्रभात-स्तोत्र	२२
१०.	मंगलाष्टक-स्तोत्र	२५
११.	शान्तिनाथ-स्तवन (संस्कृत)	२९
१२.	श्री आचार्य वन्दना, सिद्ध, श्रुत, आचार्य (सार्थ)	३०
१३.	गणधर वलय	३४

खण्ड २

१.	जिनस्तुति शतक दोहाथुदि - प.पू. आ. श्री विद्यासागरजी	३५
२.	गुरु-भक्ति (भजन)	४४
३.	गोमटेश-अष्टक (भाषा)	४५
४.	मंगल-भावना (दोहा)	४७
५.	पूज्य-वंदना	४९
६.	नीति-मृत	५१
७.	शिक्षाप्रद-दोहावली	५३
८.	सिद्ध भक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	५५
९.	आचार्य भक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	५८
१०.	पंच गुरुभक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	६०
११.	योग भक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	६२
१२.	शान्ति भक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	६४
१३.	नन्दीश्वर भक्ति आ. श्री. पद्यानुवाद	६८

खण्ड ३

१.	दर्शन-पाठ (हिन्दीसार्थ)	८०
२.	बारह-भावना(भूधरदासजी)	८२
३.	मेरी-भावना (युगवीर)	८४
४.	समाधि-मरण	८६
५.	समाधि-भावना (शिवराम)	८७
६.	सामायिक पाठ (हिन्दी)	८८
७.	आचार्य श्री विद्यासागरजी पूजन	९१
८.	आ. श्री आरती	९५
९.	आरती	९६
१०.	विद्यावन्दना	९७
११.	संत साधु बनके विचरुँ	९८
१२.	ऐसे गीत गाया करो	९९

१३. ओ मेरे जादू के थैले १००
१४. इतनी शक्ति हमें देना १०१
१५. धरती की शान (प्रार्थना) १०२
१६. जिनवाणी-स्तुति १०३
१७. हमारे कष्ट मिट जायें (इष्ट-प्रार्थना) १०४
१८. भावना दिन रात १०५
१९. गुरुभक्ति (भूधरदास) १०६
२०. समाधि मरण (द्यानतराय) १०८
२१. हार नहीं होती ११०
२२. जिनवाणी स्तुति १११

खण्ड ४

१. प्रतिक्रमण-भजन ११२
२. श्रावक प्रतिक्रमण ११३
३. आहारदान विधी १२२
४. चौका शुद्धि १२५
५. नारीकर्तव्य १२७
६. रजो धर्म स्त्री के कर्त्तव्य १३२
७. तम्बाकू से बचे ''मैथीदाना लेवें'' १३७
९. सूआ-सूतक व्यवहार १३८
१०. सूआ-सूतक सारिणी (चार्ट) १३९
८. दिव्य जय-घोष (नारें) १४०

❖❖❖

* खण्ड १ *

मंगलाचरण

णमो-अरिहंताणं, णमो-सिद्धाणं, णमो-आइरियाणं,
णमो-उवज्झायाणं, णमो-लोए-सव्व साहूणं ।।

एसो पंच णमोक्कारो सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मंगलाणं-च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ।।

चत्तारि-मंगलं - अरिहंता मंगल, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं
केवलि-पण्णतो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि-लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा साहू
लोगुत्तमा, केवलि-पणत्तो-धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते-सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे
सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं
धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

नमस्तस्यै-सरस्वत्यै-विमलज्ञान-मूर्तये ।
विचित्रालोक-त्रायेयं यत्प्रसादात् प्रवर्तते ।।
नमो वृषभ-सेनादि गौतमान्त गणेशिने ।
मूलोत्तर-गुणाढ्याय-सर्वस्मै मुनये नमः ।।
गुरु भक्त्या वयं सर्द्ध द्वीप द्वितय वर्त्तिनः ।
वन्दामहे-त्रिसङ्रुयोन-नव-कोटि मुनीश्वरान् ।।
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

❖❖❖

त्रिकाल एवं विदेह क्षेत्र तीर्थंकर

भूतकाल-तीर्थङ्कराः

(१) श्री निर्वाण (२) सागर (३) महासाधु
(४) विमलप्रभ (५) श्रीधर (६) सुदत्त (७) अमलप्रभ
(८) उद्धर (९) अंगिर (१०) सन्मति (११) सिन्धु
(१२) कुसुमाञ्जलि (१३) शिवगण (१४) उत्साह
(१५) ज्ञानेश्वर (१६) परमेश्वर (१७) विमलेश्वर
(१८) यशोधर (१९) कृष्णमति (२०) ज्ञानमति
(२१) शुद्धमति (२२) श्री भद्र (२३) अतिक्रान्त
(२४) शान्तश्चेतिभूतकाल सम्बधि चतुर्विंशति-
तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

वर्तमानकाल-तीर्थङ्कराः

(१) श्री ऋषभनाथजी (२) अजितनाथ (३) सम्भवनाथ
(४) अभिनन्दननाथ (५) सुमतिनाथ (६) पद्मप्रभ
(७) सुपार्श्वनाथ (८) चन्द्रप्रभजी (९) पुष्पदन्तजी
(१०) शीतलनाथ (११) श्रेयांसनाथ (१२) वासुपूज्य
(१३) विमलनाथ (१४) अनन्तनाथ (१५) धर्मनाथ
(१६) शान्तिनाथ (१७) कुन्थुनाथ (१८) अरनाथ
(१९) मल्लिनाथ (२०) मुनिसुव्रतनाथ (२१) नमिनाथ
(२२) नेमिनाथ (२३) पार्श्वनाथ (२४) महावीराश्चेति
वर्तमानकाल-सम्बधि-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

भविष्यत्काल तीर्थङ्कराः

(१) श्री महापद्म (२) सुरदेव (३) सुपार्श्व
(४) स्वयंप्रभ (५) सर्वात्मभूत (६) देवपुत्र
(७) कुलपुत्र (८) उदंक (९) प्रौष्ठिल
(१०) जयकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (१२) अर (अमम)
(१३) निष्पाप (१४) निष्कषाय (१५) विपुल
(१६) निर्मल (१७) चित्रगुप्त (१८) समाधिगुप्त
(१९) स्वयम्भू (२०) अनिवृत्तक (२१) जय
(२२) विमल (२३) देवपाल (२४) अनन्तवीर्याश्चेति
भविष्यत्- काल- सम्बन्धि- चतुर्विंशति-
तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

विदेह-क्षेत्रस्थ-विंशतितीर्थङ्कराः

(१) श्री सीमन्धर (२) युगमन्धर (३) बाहु (४) सुबाहु
(५) सुजात (६) स्वयंप्रभु (७) वृषभानन
(८) अनन्तवीर्य (९) सुरप्रभ (१०) विशालकीर्ति
(११) वज्रधर (१२) चंद्रानन (१३) भद्रबाहु
(१४) भुजंगम (१५) ईश्वर (१६) नेमप्रभ (नेमि)
(१७) वीरसेन (१८) महाभद्र (१९) देवयश
(२०) अजितवीर्याश्चेति विदेहक्षेत्रस्थ-विद्यमान
विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

निर्वाण काण्ड (भैयालालजी)

दोहा: वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिर-नाय ।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई: अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार ॥ २ ॥

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर ।
शिखर समेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वन्दौं निश-दीस ॥ ३॥

वरदत्तराय अरु इन्द्र मुनिन्द्र, सायरदत्त आदि गुण वृन्द ।
नगर तारवर मुनि उठ कोड़ि, वन्दों भावसहित कर जोड़ि ॥ ४॥

श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ।
सम्बु प्रद्युम्न कुमार द्वै-भाय, अनिरुद्ध आदि नमूँ तसु पाय ॥५॥

रामचन्द्र के सुत द्वैवीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर ।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरी वन्दौं निरधार ॥ ६॥

पाण्डव तीन द्रविड-राजान्, आठ कोडि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भाव सहित वन्दों निश-दीस ॥ ७॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये ।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ-काल ॥ ८॥

राम हनू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील ।
कोड़ि निन्यानवे मुक्ति पयान, तुङ्गीगिरीवन्दों धरि ध्यान ॥ ९॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान ।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते वन्दों त्रिभुवनपति ईस ॥ १०॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा तट सार ।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दों धरि परम हुलास ॥ ११॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठ कोडिवन्दों भव पार ॥ १२॥

बड़वानी बड़नयन सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग ।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु-कर्ण, ते वन्दों भव-सागर-तर्ण ॥ १३॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार ।
चेलना-नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दों नित तास ॥ १४॥

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रुप ।
गुरुदत्तादि-मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गये वन्दों नित तहाँ ॥ १५॥

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिलें त्रय होय ।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते बन्दों नित सुरत सँभार ॥ १६ ॥

अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान ।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय ॥ १७॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय ।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करुँ प्रणाम ॥ १८॥

जसरथ राजा के सुत कहें, देश कलिंग पाँच सौ लहे ।
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करुँ जोरि जुगपान ॥ १९॥

समवशरण श्री पार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दी गिरि नयनानन्द ।
वरदत्तादि पँच ऋषिराज, ते वन्दों नित धरम-जिहाज ॥ २०॥

मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बू स्वामी गये निर्वाण ।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दों नित दीन-दयाल ॥ २१ ॥

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजे तहाँ ।
मन वच काय सहित सिरनाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय ॥२२॥

संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जयनिर्वाण काण्ड गुणमाल ॥ २३॥

॥ इति निर्वाण काण्ड ॥

❖❖❖

गोम्मटेस-थुदि (प्राकृत)

आ. श्री नेमिचंद्र जी

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं ।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्ण पासं ।
गइंद-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥ २॥

सुकण्ठ-सोहा जियदिव्व संखं, हिमालयुद्दाम विसाल कंधं ।
सुपेक्ख णिज्जायल सुट्ठमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

विंज्झाय लग्गे पविभासमाणं, सिंहामणिं सव्व-सुचेदियाणं ।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

लया समक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध सुपक्करुक्खं ।
देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

दियंबरो जो ण च भीइ जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो ।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

आसां ण जो पेक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं ।
विराय भावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

उपहि मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोहहारयं ।
वस्सेय पज्जंतमुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

❖❖❖

दर्शन-पाठ-संस्कृत

दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पाप-नाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्ष-साधनम् ॥ १ ॥

अर्थ - देवाधिदेव जिनेन्द्र देव का दर्शन पापों का नाश करने वाला है, स्वर्ग जाने के लिये सीढ़ी के समान वह मोक्ष का साधन है ।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ २ ॥

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से तथा साधुओं की वंदना करने से, पाप बहुत समय तक नहीं ठहरते । जैसे-छिद्र होने से हाथ में पानी नहीं ठहरता है ।

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्म-रागसम-प्रभम् ।
जन्म-जन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥

अर्थ - पद्मराग मणि के समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान् का दर्शन करने से अनेक जन्मों के किये हुए पाप नाश हो जाते हैं ।

दर्शनं जिन-सूर्यस्य, संसार-ध्वान्त नाशनम् ।
बोधनं चित्त पद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ॥ ४ ॥

अर्थ - सूर्य के समान जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से, संसार रुपी अन्धकार नष्ट हो जाता है, चित्तरुपी कमल खिलता है और सर्वपदार्थ प्रकाश में आते हैं अर्थात् जाने जाते हैं ।

दर्शनं जिन-चन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणम् ।
जन्म-दाह-विनाशनाय, वर्धनं सुख-वारिधेः ॥ ५ ॥

अर्थ - चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्र देव का दर्शन करने के सत्यधर्म रुपी अमृत की वर्षा होती है, संसार के दुःखों का नाश होता है और सुख रुपी समुद्र की वृद्धि होती है ।

जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्टगुणार्णवाय।
प्रशान्तरुपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६॥

अर्थ - ऐसे देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो। जो जीवादि सप्त तत्त्वों के बताने वाले, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के समुद्र, शांतरुप मुद्राधारक दिगम्बर हैं।

चिदानन्दैक-रुपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ७॥

अर्थ - जो ज्ञानानंद एक स्वरुप वाले हैं, अष्टकर्मों को जीतने वाले हैं, परमात्म स्वरुप हैं, ऐसे सिद्ध आत्मा को अपने परमात्म स्वरुप के प्रकाशित होने के लिए नित्य नमस्कार हो।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य-भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ८॥

अर्थ - आपकी शरण के अलावा संसार में मेरे लिए कोई शरण नहीं हैं, आप ही शरण हैं, इसलिए करुणाभाव करके, हे जिनेन्द्रदेव ! भगवान् ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ ९॥

अर्थ - तीनों लोकों में कोई अपना रक्षक नहीं है, रक्षक नहीं है, रक्षक नहीं है (यदि कोई रक्षक है तो वे वीतराग देव आप ही हैं) क्योंकि आपसे बड़ा न तो कोई देव हुआ है और न ही भविष्य में कभी होगा।

जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति, र्जिनेभक्ति-र्दिनेदिने।
सदामेऽस्तुसदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे ॥ १०॥

अर्थ - मैं यह आकांक्षा करता हूँ कि जिनेन्द्र भगवान के प्रति मेरी भक्ति प्रतिदिन और प्रत्येक भव में बनी रहे।

जिनधर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चटोऽपि दरिद्राऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥ ११॥

अर्थ - जिनधर्म रहित चक्रवर्ती होना भी अच्छा नहीं है, जिनधर्म धारी, दास तथा दरिद्री हो तो भी अच्छा है।

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जन्ममृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिन-दर्शनात् ॥ १२॥

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से करोड़ों जन्मों के एकत्रित हुये पाप तथा जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु एवं रोग अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

अद्या-भवत् सफलता नयन-द्वयस्य, देव ! त्वदीय चरणाम्बुज वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक तिलक प्रतिभासते मे, संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणः ॥ १३॥

अर्थ - हे देवाधिदेव ! आपके कल्याणकारी चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुए। हे तीनों लोकों के तिलक स्वरुप आपके प्रताप से, मेरा संसार रुपी समुद्र, हाथ में लिये गये चुल्लु भर पानी के समान प्रतीत होता है, अर्थात् आपके प्रताप से मैं सहज ही संसार समुद्र से पार हो जाऊँगा।

❖❖❖

अच्छा कार्य करना मनुष्य की अच्छाई है
किंतु जो स्वयं यह कहता है कि
मैंने यह अच्छा सुंदर कार्य किया,
यह अभिमान ही उसकी अच्छाई को घटाता है।

मन्दालसा स्तोत्रम्

श्री शुभचंद्र आचार्य विरचित

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां,
मन्दालसा वाक्य-मुपाः स्वपुत्र ॥ १ ॥

ज्ञातोऽसि दृष्टोऽसि परात्मरुपो,
अखण्डऽरुपोऽसि गुणालयोऽसि ।
जितेन्द्रियस्त्वं त्यजमानमुद्रा,
मन्दालसा वाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ २ ॥

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीन,
सिद्धस्वरुपोऽसि कलङ्कमुक्तः ।
ज्योतिःस्वरुपोऽसि विमुञ्च मायां,
मन्दालसावाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ३ ॥

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि,
चिद्रुपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि ।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहम्,
मन्दालसावाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ४ ॥

निष्कामधामासि विकर्मरुपो,
रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रं ।
वेत्तासि चेतोऽसि विमुञ्चकामं,
मन्दालसावाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ५ ॥

प्रमाद मुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि,
अनन्तबोधादि चतुष्टयोऽसि ।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरुपम्,
मन्दालसाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ६ ॥

कैवल्याभावोऽसि निवृत्तयोगो,
निरामयो ज्ञातसमस्ततत्वः ।
परात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरुपम्,
मन्दालसावाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ७ ॥

चैतन्यरुपोऽसि विमुक्तमारोऽ,
भावा दिकर्मासि समग्रवेदी ।
ध्याय प्रकामं परमात्मरुपम्,
मन्दालसाक्यमुपाः स्वपुत्र ॥ ८ ॥

इत्यष्टकैर्या पुरतस्तनूजा,
बिवोध्य नाथं नरनाथपूज्यं ।
प्रावृज्य भीता भवभोग भावात्,
स्वकैस्तदासौसुगति प्रपेदे ॥ ९ ॥

इष्यष्टकं पापपराङ्मुखो यो,
मन्दालसया भणति प्रमोदात् ।
स सद्गति श्री शुभचन्द्रभासि,
सम्प्राप्य निर्वाणगति प्रपद्येत ॥ १० ॥

॥ इति श्री मंदालसा स्तोत्राय नमः ॥

❖❖❖

दृष्टाष्टक स्तोत्र

(सकलचन्द्र मुनीद्र विरचित)

दृष्टं जिनेन्द्र-भवनं भवताप-हारि
भवयात्मनां विभव-संभव-भूरिहेतु।
दुग्धाब्धि-फेन-धवलोज्जवल-कूटकोटी-
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानम् ॥ १ ॥

अर्थ - आज मैंने जो भव्य जीवों के ताप को हरने वाली है, ऐसे अपरिमित वैभव की उत्पत्ति का कारण है और जो दूध तथा समुद्र फेन के समान धवल श्वेत उज्जवल शिखर के कंगूरों में लगे हुए ध्वजाओं समूह-पंक्तियों से शोभायमान है ऐसे जिनालय के दर्शन किए हैं।

दृष्टं जिनेन्द्र-भवनं भुवनैक-लक्ष्मी -
धामर्द्धि वर्द्धित-महामुनि-सेव्यमानम्।
विद्या-धरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य-
पुष्पाञ्जलि-प्रकर-शोभित-भूमि-भागम् ॥ २ ॥

अर्थ - आज मैंने जो तीनों लोक की लक्ष्मी का एक आश्रय है, जो ऋद्धिवान महामुनियों से भरी हुई है और जहां की भूमि विद्याधरों और देवों की वधूजनों के द्वारा बिखेरी गयी दिव्य पुष्पांजलि के कारण शोभायमान हो रही है ऐसे जिनेन्द्रमहालय के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-
विख्यात-नाक-गणिका-गण-गीयमानम्।
नानामणि-प्रचय-भासुर-रश्मिजाल-
व्यालीढ़-निर्मल-विशाल-गवाक्षजालम् ॥ ३ ॥

अर्थ - आज मैंने जहाँ पर भवनवासी आदि देवों की गणिकार्ये(देवियाँ) गान कर रहीं हैं और जिसके विशाल गवाक्षजाल नाना प्रकार के मणियों के समूह से दैदीप्यमान कान्ति को विखेर रहे हैं ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुर-सिद्ध-यक्ष-
गन्धर्व-किन्नर-करार्पित-वेणु-वीणा।
संगीत-मिश्रित-नमस्कृत-धीरनादै-
रापूरिताम्बर-तलोरु-दिगन्तरालम् ॥ ४ ॥

अर्थ - आज मैंने जहाँ का संपूर्ण आकाशतल और विशाल दिगन्तराल देव, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व और किन्नरों के द्वारा हाथ में वेणु निर्मित वीणा लेकर नमस्कार करते समय किये गये संगीत नाद से आपूरित पूर्ण रुप से भरे हुए ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विलसद्विलोल-
मालाकुलालि-ललितालक-विभ्रणम्।
माधुर्यवाद्य-लय-नृत्य-विलासिनीनां,
लीला-चलद्वलय-नुपुर-नाद-रम्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ - आज मैंने जो हिलती हुई सुन्दर सुगंधित मालाओं से आकुल हुए भ्रमरों के कारण सुंदर नेत्रों अलकों की शोभा को धारण कर रहा है। जो मधुर शब्द कर्ण इंदियों को प्रिय ऐसे वाद्य और लय के साथ नृत्य करती हुई वाराङ्गनाओं की लीला से हिलते हुए वलय और नुपुर के नाद से रमणीय प्रतीत होता है ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणि-रत्न-हेम-
सारोज्वलैः कलश-चामर-दर्पणाद्यैः।
सन्मङ्गलैः सततमष्टशत-प्रभेदै-
र्विभ्राजितं विमल-मौक्तिक-दामशोभम् ॥ ६ ॥

अर्थ- आज मैंने जो मणि, रत्न और स्वर्ण से निर्मित एक सौ आठ प्रकार के कलश चामर और दर्पण आदि समीचीन मङ्गल द्रव्यों से शोभित हो रहा है और जो निर्मल मौक्तिक मालाओं से सुशोभित है ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं वर-देवदारु-
कर्पूर-चन्दन-तुरुष्क-सुगन्धि-धूपैः।
मेघायमान-गगनं पवनाभिघात-
चञ्चच्चलद्विमल-केतन-तुङ्ग-शालम् ॥ ७ ॥

अर्थ - आज मैंने जहाँ पर उँचे शाल उत्तम प्रकार के देवदारु, कपूर चन्दन और तुरुष्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से बने हुए सुगन्धित धूप से निकले हुए धूम्र के कारण मानो आकाश में मेघ ही छाये हों इस प्रकार की विचित्र शोभा को लिए हुए पवन के अभिघात से हिलती हुई निर्मल ध्वजाओ से युक्त है ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं धवला-तपत्र-
च्छाया-निमग्न-तनु-यक्षकुमार-वन्दैः।
दोधूयमान-सित चामर-पंक्तिभासं,
भामंडल-द्युतियुत-प्रतिमाभि-रामम् ॥ ८ ॥

अर्थ - आज मैंने धवल आत पत्र की छाया में लीन हुए यक्षकुमारों के कारण तो ढुरते हुए शुक्ल चामरों की पंक्ति की शोभा को धारण करता है और जो भामण्डल की द्युति से युक्त प्रतिमाओं के कारण अत्यन्त सुंदर नैत्र गोचर हो रहे है ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विविधप्रकार-
पुष्पोपहार-रमणीय-सुरत्नभूमि।
नित्यं वसन्त तिलक श्रियमादधानं,
सन्मंगलं ''सकल-चन्द्रमुनीन्द्र''-वन्द्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ - आज मैंने नाना प्रकार के पुष्पों के उपहार के कारण जहाँ की सुन्दर रत्नभूमि सुशोभित हो रही है, जो निरन्तर बसन्त ऋतु में तिलक वृक्ष की शोभा को धारण करता है, जो सर्वोत्तम मङ्गलरुप है और जो सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुखकर मुनिराजों अथवा सकल चन्द्र नामक मुनिराज के द्वारा वन्दनीय है ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

दृष्टं मयाद्य मणि-काञ्चन-चित्र-तुंग-
सिंहासनादि-जिनबिम्ब-विभूति-युक्तम्।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे
सन्मंगलं ''सकल-चन्द्रमुनीन्द्र''-वन्द्यम् ॥ १० ॥

अर्थ - आज मेरे द्वारा मणि और काञ्चन के कारण विचित्र शोभा को लिए हुए उच्च सिंहासन आदि विभूति से युक्त जिनबिम्ब से शोभायमान हो रहा है, जिसकी निरुपम किर्ति गायी जाती है। जो मेरे लिए मङ्गल स्वरुप है और जो सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुखकर मुनिराजों अथवा सकल चन्द्र नामक मुनिराज के द्वारा वन्दनीय है ऐसे जिन चैत्यालय के दर्शन किए।

❖❖❖

* समय का मूल्य *

* शिक्षण से अधिक महत्व हैं संस्कारो का इस लिये प्रत्येक गृहस्थ को चाहिए अपने बच्चो को संस्कारित शाला में प्रशिक्षण दिलाना चाहिये।
* जो समय को आलस्य में बर्बाद करता है समय उसे हर पल बर्बाद करता है।
* जिनने जाना अनमोल समय वह आगे बढ़ पाये है।
* समय तुम्हे नहीं पहचानता वह चाहता है तुम उसे पहचानो।
* समय तुम्हे नहीं पकड़ेगा वह चाहता है तुम उसे दृढ़ता से पकड़ो।

अद्याष्टक स्तोत्र

अद्य में सफलं जन्म, नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षय-संपदः॥ १ ॥

अर्थ - हे देवाधि देव ! आज मैंने अक्षय सम्पत्ति के हेतु भूत आपके दर्शन किए। इससे मेरा जन्म सफल हो गया और यह दोनों नेत्र सफल हो गये।

अद्य संसार-गंभीर, - पारावारः सुदुस्तरः ।
सुतरोऽयं क्षणेनैव, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥ २॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से तरने के लिए अत्यन्त कठिन यह गम्भीर संसार रुपी समुद्र मेरे लिए क्षण मात्र में सुतर सुलभ हो गया।

अद्य में क्षालितं गात्रं, नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥ ३॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से मेरा शरीर धुल गया, नेत्र निर्मल हो गए और मैंने धर्मरुपी तीर्थों में स्नान कर लिया।

अद्य में सफलं जन्म, प्रशस्तं सर्वमंगलम् ।
संसारार्णव-तीर्णोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥ ४॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से मेरा जन्म सफल हो गया, मुझे प्रशस्त सर्वमंगलों की प्राप्ति हो गयी और मैं संसार रुपी समुद्र से तैरकर मैं पार हो गया।

अद्य कर्माष्टक-ज्वालं, विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गते-र्विनिवृत्तोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से मैंने कषाय के साथ आठ कर्मों को जलाकर दूर कर दिया और मैं दुर्गति से उस पार हो गया हूँ।

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे, शुभाश्चैकादश-स्थिताः ।
नष्टानि विघ्न-जालानि, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥ ६॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से मेरे ग्यारह स्थान में स्थित सब ग्रह सौम्य और शुभ हो गये तथा विघ्नजाल नष्ट हो गये।

अद्य नष्टो महाबन्धः, कर्मणां दुःखदायकः ।
सुख-सद्गं समापन्नो, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से दुःख देने वाला कर्मो का महानबन्ध नष्ट हो गया और मैं सुखकर संगति को प्राप्त हो गया।

अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादन - कारकम् ।
सुखाम्भोधि-निमग्नोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से दुःख को उत्पन्न करने वाले आठ कर्म नष्ट हो गये तथा मैं सुखरुपी सागर में निमग्न (लीन) हो गया।

अद्य मिथ्यान्ध-कारस्य, हन्ता ज्ञान - दिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से मेरे शरीर में मिथ्यात्व रुप अन्धकार का नाश होकर ज्ञान रुपी सूर्य उदित हुआ है।

अद्याहं सुकृतीभूतो, निर्धूताशेष-कल्मषः ।
भुवन-त्रय-पूज्योऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आपका दर्शन करने से समस्त कल्मष (पाप) को धोकर मैं सुकृत होकर के तीन लोक में पूज्य हो गया।

अद्याष्टाकं पठेद्यस्तु, गुणानंदित - मानसः ।
तस्य सर्वार्थ-संसिद्धि, र्जिनेन्द्र-तव दर्शनात्॥ ११॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र ! आपका दर्शन करते समय जो आपके गुणों में आनन्द पूर्वक अपने मन को लगाकर इस अद्याष्टक स्तोत्र को पढ़ता है उसे आपका दर्शन करने मात्र से सब अर्थों में सिद्धि या (सर्वार्थ सिद्धि) उर्ध्व लोक की प्राप्ती होती है।

❖❖❖

परमानन्द-स्तोत्रम्

परमानन्द-संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

अनंतसुख-संपन्नं, ज्ञानामृत-पयोधरम् ।
अनंतवीर्य-संपन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥ २ ॥

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसङ्घविविर्जितम् ।
परमानन्दसंपन्नं, शुद्धचैतन्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यात्, मोहचिन्ता च मध्यमा ।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, पर-चिन्ता-धमाधमा ॥ ४ ॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसं ।
विवेकमंजलिं कृत्वा, तं पिबंति तपश्विनः ॥ ५ ॥

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पंडितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द-कारणम् ॥ ६ ॥

नलिनाच्च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
सोऽयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥ ७ ॥

द्रव्यकर्ममलैः मुक्तं, भावकर्म विवर्जितम् ।
नोकर्म-रहितं सिद्धं, निश्चयेन चिदात्मकम् ॥ ८ ॥

आनन्दं ब्रह्मणो रुपं, निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यंधा इव भास्करम् ॥ ९ ॥

सद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कार लक्षणम् ॥ १० ॥

ये ध्यानलीना मुनयः प्रधानाः, ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सन्प्राप्य शीघ्रं परमात्मलत्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥ ११ ॥

आनंदरुपं परमात्मतत्त्वं, समस्त संकल्पविकल्पमुक्तम् ।
स्वाभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वमेव तत्त्वम् ॥ १२ ॥

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयम् ।
अनंतसुखसंपन्नम्, सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥ १३ ॥

लोकमात्रप्रमाणोयं, निश्चये न हि संशयः ।
व्यवहारे तनुमात्रः, कथितः परमेश्वरैः ॥ १४ ॥

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा निर्विकल्प-समाधितः ॥ १५ ॥

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥ १६ ॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः ॥ १७ ॥

स एव सर्व कल्याणं, स एव सुखभाजनं ।
स एव शुद्ध चिद्रुपं, स एव परमं शिवः ॥ १८ ॥

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः ।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः ॥ १९ ॥

परमाह्लाद-संपन्नं, रागद्वेष-विवर्जितम् ।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः ॥ २० ॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरुपे व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥ २१ ॥

तत्सदृशं निजात्मानं, यो जानाति स पंडितः ।
सहजानंद-चैतन्यं, - प्रकाशाय महीयसे ॥ २२ ॥

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥ २३ ॥

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्ति-रुपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पंडितः ॥ २४ ॥

॥ इति श्री परमानन्दस्तोत्राय नमः ॥

❖❖❖

*** किससे किसकी सुन्दरता होती है ***

रुप की सुन्दरता शील के पालने में
धन की सुन्दरता दान के देने से है ।
देह की सुन्दरता तप करने से है ।
मन की सुन्दरता परिजनों की सरलता से है ।

श्री वीतराग-स्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधु र्न कर्मा न कर्ता ।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

न बन्धो न मोक्षो न रागादि-दोषः, न योगं न भोगं न व्याधि-र्न शोकः ।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षु-र्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा ।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

न जन्म न मृत्युः न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा ।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्वनाथं, हृषी-केशविध्वस्त-कर्मादिजालम् ।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि-गात्रं, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्ति-र्न स्नेहः ।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरुपम् ।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्द-रुपं नमो वीतरागम् ॥

आत्माराम - गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगता गते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे,
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायन्ति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष - हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥

❖❖❖

श्री सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गाव-तरोत्सवे य-दभवज् जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञान-प्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाण गमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः
सङ्गीत स्तुति मङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥ १ ॥

श्रीमन् नतामर किरीट मणिप्रभाभि,
रालीढ़ - पाद - युग - दुर्धर - कर्मदूर !
श्री नाभिनन्द ! जिनाजित ! शम्भवाख्य !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ २॥

छत्रत्रय - प्रचल - चामर - वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने ! सुमते ! जिनेन्द्र !
पद्मप्रभा - रुणमणि - द्युति - भासुराङ्ग ।
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम-सुप्रभातम् ॥ ३ ॥

अर्हन् ! सुपार्श्व कदलीदलवर्ण गात्र,
प्रालेय-तारगिरि मौक्तिक वर्णगौर !
चन्द्रप्रभ ! स्फटिक - पाण्डुर - पुष्पदन्त !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम-सुप्रभातम् ॥ ४ ॥

सन्तप्त-काञ्चन-रुचे जिन - शीतलाख्य,
श्रेयान् ! विनष्ट - दुरिताष्ट - कलङ्क - पङ्क ।
बन्धूक - बन्धुर - रुचे ! जिन - वासुपूज्य !
त्वद्ध्यनतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ ५ ॥

उद्दण्ड - दर्पक - रिपो ! विमला - मलाङ्ग,
स्थेमन् ननन्त - जि-दनन्त सुखाम्बु-राशे ।

दुष्कर्म - कल्मष - विवर्जित - धर्मनाथ !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ ६ ॥

देवा - मरी - कुसुम - सन्निभ - शान्तिनाथ !
कुन्थो ! दयागुण विभूषण भूषिताङ्ग ।
देवाधि - देव ! भगवन् नरतीर्थ - नाथ ,
त्वद्ध्यनतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ ७ ॥

यन्मोह - मल्ल - मद - भञ्जन - मल्लिनाथ,
क्षेमङ्करा - वितथ - शासन - सुव्र - ताख्य !
सत्सम्पदा - प्रशमितो - नमि - नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

तापिच्छ-गुच्छ-रुचि-रोज्जवल-नेमिनाथ !
घोरोपसर्ग - विजयिन् ! जिन - पार्श्वनाथ ।
स्याद्वाद - सूक्ति मणिदर्पण ! वर्धमान !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम-सुप्रभातम् ॥ ९॥

प्रालेय - नील हरिता - रुण पीत - भासं,
यन्मूर्ति - मव्यय सुखा - वसथं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति - सप्तति-शतं जिन-वल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम-सुप्रभातम् ॥ १० ॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परि - कीर्तितम् ।
चतुर्विंशति तीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने ॥ ११ ॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभि - नन्दितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः ,सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थ, भव्यसत्त्व सुखावहम्॥१३॥

सुप्रभातम् जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलित चक्षुषां।
अज्ञान-तिमिरान्धानां, नित्यमस्त-मितोरविः॥१४॥

सुप्रभातं जिनन्द्रस्य, वीरः कमल-लोचनः ।
येन कर्माटवी-दग्धा,शुक्लध्यानोग्र-वह्बिना॥१५॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम् ।
त्रैलोक्य-हितकर्तृणां,जिनानामेव शासनम्॥१६॥

॥ इति सुप्रभातं स्तोत्रम् ॥

❖❖❖

- यदि बुराईयों पर विजय प्राप्त करना है तो धर्म ही एकमात्र सहारा हो सकता है।
- क्रोध की छोटी-छोटी धाराओं को सुखाओ नहीं तो क्रोध की नदी भर जायेगी।
- शत्रु को ज्यादा दुर जाने की वजह खुद के भीतर झाँकियें वह मिल जायेगा।
- क्रोधाग्नि पहले खुद को जलाती है धैर्य पा शान्त चित्त से इस पर नियंत्रण करें।
- एक रुपये की बात के लिए हजारों लाखों का गुस्सा करना क्या फायदे का सौदा है।

श्री मंगलाष्टकम् स्तोत्र

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्त-सु-पाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ १ ॥

अर्थ - इन्द्रों के द्वारा जिनकी पूजा की गई, ऐसे अरिहन्त भगवान् सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान्, जिन शासन को प्रकाशित करनेवाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढ़ाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु, ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें।

श्रीमन्नम्र - सुरा - सुरेन्द्र - मुकुट -, प्रद्योत-रत्नप्रभा,
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्-, भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्-, ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ २ ॥

अर्थ - शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरुपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायन हो रही है। और जो प्रवचन रुप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी तुम्हारे पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी करें।

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति श्री नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः ।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयः,
प्रोक्तं चत्रिविधं चतुर्विधममी, कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ३ ॥

अर्थ - निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे

अपवर्ग (मोक्ष) को देनेवाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा (जिनगाम), समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मी का आकार भूत जिनालय मिलकर चार प्रकार का धर्म कहा गया है वह तुम्हारे पापों का क्षय करे और तुम्हें सुखी करें।

नाभेयादिजिनाः प्रशस्ता-वदनाः[1], ख्याताश्चतुर्विंशतिश्,
श्रीमन्तो भरतेश्वर - प्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु लाङ्गलधराः, सप्तोतरार्विंशतिस्,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टि-पुरुषाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ४॥

अर्थ - तीनों लोकों मे विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान् आदि चौबीस तीर्थंकर, श्रीमान् भरतेश्वर आदि १२ चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र ये ६३ शलाका महापुरुष तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें।

ये सर्वौषधि-ऋद्धयः सुतपसां, वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्ग-महानिमित्तकुशलाश्, चाष्टौ वियच्चारिणः।
पञ्चज्ञान-धरास्त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋ-द्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ५॥

अर्थ - सभी औषधि ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधृत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारि, अष्टाङ्ग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पाँच प्रकार के ज्ञान की ऋाद्ध क धारा, तान प्रकार क बला का ऋाद्ध क धारा आर बुाद्ध-ऋद्धीश्वर, ये सातों जगत्पूज्य गणनायक तुम्हारे पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी बनावें। बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध रस और क्षेत्र के भेद से ऋद्धियों के आठ भेद हैं।

१. धिपास्त्रि भुवन

ज्योतिर्व्यन्तर भावनाऽमरगृहे, मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बूशाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा, वक्षार रुप्याद्रिषु।
इक्ष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-गृहाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ६॥

अर्थ - ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के, मेरुओं, कुलाचलों, जम्बू वृक्षों और शाल्मलिवृक्षों वक्षारों, विजयार्धपर्वतों, इक्ष्वाकारपर्वतों, कुंडलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप और मानुषोत्तर पर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत) के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय तुम्हारे पापें का क्षय करें और तुम्हें सुखी बनावें।

कैलासे वृषभस्य निर्वतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ७॥

अर्थ - भगवान् ऋषभदेव की निर्वाणभूमि कैलाश पर्वत पर है। महावीरस्वामी की पावापुर में है। वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में हैं। नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है। ऐसी ये सभी निर्वाण भूमियाँ तुम्हें निष्पाप बना दें और तुम्हें सुखी करें।

सर्पो हारलता भवत्यसिलता, सत्पुष्दामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमति, प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ८॥

अर्थ - धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल हो जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो

जाते हैं। अधिक क्या कहें धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है। वही धर्म तुम सबका कल्याण करे।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा, सम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ९ ॥

अर्थ - तीर्थंकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक केवलज्ञान कल्याणक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक के देवों द्वारा सम्भावित महोत्सव तुम्हें सर्वदा माङ्गलिक रहें।

इत्थं श्री जीन मंङ्गलाष्टकमिदं, सौभाग्य-सम्पत्करं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्, तीर्थंकराणामुषः ।
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै, र्धर्मार्थ कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता, निर्वाण लक्ष्मीरपि ॥ १० ॥

अर्थ - सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री-जिनेन्द्र मङ्गलाष्टक को जो सुधी तीर्थंकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भाव-पूर्वक सुनते पढ़ते हैं, वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं।

❖❖❖

गुस्से को खुद पर हावि ना होने देवे

श्री शान्ति स्तवन

समग्रतत्त्व दर्पणम् विमुक्तिमार्ग घोषकम् ।
कषाय मोहमोचकं नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ १ ॥

त्रिलोक-वन्द्यभूषणं, भवाब्धि नीर शोषणं ।
जितेन्द्रियम् अजं जिनं, नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ २ ॥

अखण्डखण्ड-गुणधरं, प्रचण्डकाम-खण्डनम् ।
सुभव्यपद्म-दिनकरं नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ ३ ॥

एकान्तवाद - मतहरं, सुस्याद्वाद - कौशलं ।
मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥ ४ ॥

नृपेन्द्रचक्र मण्डनं प्रकर्म - चक्र चूरणं ।
सुधर्म-चक्र-चालकं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥ ५ ॥

अग्रन्थ नग्न केवलं, सुमोक्ष धाम - केतनं।
अनिष्ट-धनप्रभञ्जनं, नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ ६ ॥

महाश्रमण - मकिञ्चं, अकाम काम - पदधरं ।
सुतीर्थ कर्तृषोडशं, नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ ७ ॥

महाव्रतन्धरं वरं दया क्षमा - गुणाकरं ।
सुदृष्टि ज्ञान - व्रतधरं, नमामि शान्ति जिनवरम् ॥ ८ ॥

❖❖❖

श्री आचार्य वंदना (श्री सिद्ध भक्ति)

अथ नमोऽस्तु अपराह्णिक/पौर्वाह्णिक श्रीआचार्य-वंदना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ बार णमोकार)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १ ॥

तव सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे, चरित्त-सिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ २ ॥

अञ्चलिका : इच्छामि भंते। सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालाचेउं सम्म-णाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ विह-कम्म विप्प-मुक्काणं, अट्ट-गुण-सम्पण्णाणं-उड्ढ लोए-मत्थ यम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीताणागद वट्टमाण कालत्तय सिद्धाणं सव्व सिद्धाणं सया-णिच्चकालं, अंचेमि, पुंजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहि-लाहो, सुगई-गमणं, समाहि मरणं जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ - क्षायिक सम्यकत्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघु और अव्याबाध सुख–ये–आठ गुण सिद्धों के होते हैं ॥१॥

तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चरितं सिद्ध, ज्ञान सिद्ध, दर्शन सिद्ध, ऐसे सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ ॥२॥

हे भगवान ! सिद्ध भक्ति करने में और जो मैंने कार्योत्सर्ग किया है, उनमें लगे हुये दोषों की मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो सिद्ध भगवान सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान, और सम्यक चरित्र से सहित है, आठ प्रकार के कर्मो से पूर्णतः मुक्त हैं, सम्यक्त्वादि आठ गुणों से शोभित हैं। जो उर्ध्वलोक के मस्तक पर विराजमान हैं, तपश्चरण से सिद्ध हुये हैं, ऐसे सिद्धों की मैं सदा नित्य ही अर्चना करता हूँ। पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, अर्चना करता हूँ, और उन्हें नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखो का नाश हो, कर्मों का नाश हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, श्रेष्ठ गति मिले, समाधि मरण हो, और भगवान जिनेन्द्र के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।

❖❖❖

श्री श्रुत भक्ति

अथ नमोऽस्तु अपराह्णिक/पौर्वाह्णिक श्रीआचार्य-वंदना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ बार णमोकार)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य शीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाश-दष्टौ च सहस्र-संख्या, मेतच्छुतं पञ्चपदं नमामि ॥ १॥

अरहंत भासि यत्थं, गणहर देवेहिं गंथियं सम्मम्।
पणमामि भक्ति-जुत्तो, सुद-णाण महोवहिं सिरसा ॥ २ ॥

अञ्चलिका : इच्छामि भंते। सुदभति काउस्सगो, कओ तस्सालोचेउं अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय परियम्मि-सुत्त-पढमाणि ओग पुव्वगय, चूलिया चेव सुत्तत्थय थुइ धम्म काहइयं सया णिच्चकालं, अञ्चेमि, पुजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगई गमणं समाहि-मरणं जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।

अर्थ - एक सौ बारह करोड़, तेरासीलाख अठ्ठावन हजार और पाँच पद प्रमाण ऐसे इस श्रुतज्ञान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

अरहंत भगवान द्वारा अर्थ रुप से कहे गये और गणधरदेव द्वारा ग्रंथरुप से ग्रन्थित किये गये, श्रुतज्ञान रुप महासागर को भक्ति पूर्वक मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

हे भगवान ! श्रुत भक्ति करने में जो मैंने आलोचना करने की इच्छा की हैं। श्रुतज्ञान के जो अंग, उपांग प्रकीर्णक प्राभृतक, परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चुलिका, सूत्रार्थ स्तुति और धर्मकथा आदि भेद है। उन सबकी मैं सदा नित्य अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे समस्त दुःखों का नाश हो समस्त कर्मों का नाश हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मिले, समाधि मरण हो, और जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्रप्ति हो।

❖❖❖

श्री आचार्य भक्ति

अथ नमोऽस्तु अपराह्निक/पौर्वाह्निक श्रीआचार्य-वंदना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री आचार्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ बार णमोकार)

श्रुत जलधि पारगेभ्यः, स्व पर मत विभावना पटु मतिभ्यः
सुचरित-तपो निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण गुरुभ्यः ॥ १ ॥

छत्तीस गुण समग्गे, पञ्च विहाचार करण संदरिसे।
सिस्सा णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिए सदा वन्दे ॥ २ ॥

गुरु-भत्ति संजमेण य, तरन्ति संसार सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण मरणं ण पावेंति ॥ ३ ॥

ये नित्यं-व्रत-मन्त्र होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट् कर्माभि रतास्-तपो धनधनाः,साधु क्रियाःसाधवः॥४॥

शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्, चन्द्रार्क तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः॥५॥

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन नायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीराः मोक्ष मार्गोपदेशकः ॥ ६ ॥

अञ्चलिका : इच्छामि भन्ते। आयरिय-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्त जुत्ताणं, पंच विहाचाराणं, आयरियाणं; आयारादि सुद-णाणोव-देसयाणं उवज्झायाणं ति-रयण गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं; णिच्चकालं अञ्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ,

कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।

नोट - सुबह १८ बार संध्या में ३६ बार णमोकार मंत्र पढ़े।

"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं बड़े बाबा अर्हं नमः"

विद्यासागर विश्ववंद्य श्रमणं, भक्त्या सदा संस्तुवें।
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं, सर्वार्थ सिद्धि प्रदम् ॥
ज्ञान ध्यान तपोभि रक्त मुनिपं, विश्वस्य विश्वाश्रियं।
साकारं श्रमणं विशाल हृदयं, सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

॥ विद्या गुरु वन्दनम् ॥

तरणि विद्यासागर गुरु, तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर करुणा करों, वहीं से दो आशीष ॥

यही प्रार्थना आपसे, अनुनय से कर जोर।
पल-पल पग-पग बढ़, चले मोक्ष-महल की ओर ॥

बाहर श्री फल कठिन ज्यों, भीतर से नवनीत।
जिन शासक आचार्य को, विनमूँ नमूँ विनीत ॥

थकता-रुकता कब कहाँ, ध्रुव मैं नदी प्रवाह।
आह-वाह परवाह बिन, चलें सूरि शिव-राह ॥

जिनके उर मैं कल कल बहती, शुद्ध चेतना की धारा।
समतामय सम्यक्व मणी से जिनने निज को-श्रृंगारा ॥

वचनों के मोति बिखराते, अमर रहो चिंतन नागर।
मेरे उर-मैं आन विराजो, गुरुवर श्री विद्यासागर ॥

संयम सौरभ साधना जिनको करे प्रणाम।
त्याग तपस्या तीर्थ का, विद्यासागर नाम ॥

❖❖❖

गणधर-वलय

जिनान्-जितारति-गणान् गरिष्ठान्-देशावधीन्-सर्व-परावधींश्च।
सत्कोष्ठ बीजादि-पदानुसारीन्, स्तुवे-गणेशानपि-तदुणाप्त्यै ॥ १॥

संभिन्न-श्रोत्रान्वित-न्मुनीन्द्रान्, प्रत्येक सम्बोधित-बुद्धधर्मान् ।
स्वयं-प्रबुद्धांश्च-विमुक्तिमार्गान्-स्तुवे गणेशानपि-तदुणाप्त्यै ॥ २॥

द्विधा-मनःपर्यय-चित्प्रयुक्तान्, द्विपञ्च-सप्तद्वय-पूर्व-सक्तान् ।
अष्टाङ्गनैमित्तिक-शास्त्रदक्षान्-स्तुवे-गणेशानपि-तदुणाप्त्यै ॥ ३॥

विकुर्वणाख्यर्द्धि-महाप्रभावान्, विद्याधरांश्चारण ऋर्द्धि प्राप्तान् ।
प्रज्ञा श्रिता-न्नित्य-खगामिनश्च, स्तुवे गणेशानपि तदुणाप्त्यैं ॥ ४॥

आशींर्विषान्-दृष्टि विषान्मुनींद्रान्, उग्रातिदीप्तोत्तम-तप्ततप्तान् ।
महातिघोर प्रतपः प्रसक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद् गुणाप्त्यै ॥ ५ ॥

वन्द्यान् सुरैघोर गुणांश्च लोके, पूज्यान् बुधैर्घोर पराक्रमांश्च ।
घोरादि संसद्गुण ब्रह्मयुक्तान्, स्तुवे गुणेशानपि तद्गुणाप्तैं ॥ ६ ॥

आमर्द्धि खेलर्द्धि प्रजल्लविड्डिसर्वर्द्धि प्राप्तांश्च व्यथादि हंतृन ।
मनोवचः कायवलोपयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥ ७ ॥

सत्क्षीर-सर्पिर्मधुरा-मृतद्धीन्, यतीन् वराक्षीण-महानसांश्च ।
प्रवर्धमांस्त्रि जगत्प्रपूज्यान्, स्तुवे गणेशानपि तद् गुणाप्त्यै ॥ ८ ॥

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽति वीरान्, श्री वर्द्धमानर्द्धि विबुद्धि दक्षान् ।
सर्वान् मुनीन् मुक्ति वरान् ऋषीन्दान् स्तुवे गणेशानपि-तदुणाप्त्यै ॥९॥

नृसुर-खचर-सेव्या विश्व श्रेष्ठर्द्धि भूषा विविध गुण समुद्रा मारमातङ्ग सिंहाः।
भव जल निधी पोता वन्दिता मे दिशन्तु, मुनिगण सकलाः श्री सिद्धदाः सदृषीन्द्रान् ॥१०॥

इति गणधर-वलय

❖❖❖

* खण्ड २ *

जिनस्तुति शतक (दोहा थुदि)

महाकवि पूज्य आचार्य प्रवर श्री गुरुवर विद्यासागरजी रचित

'मंगलाचरण'

शुद्ध-भाव से नमन हो, शुद्ध-भाव के काज ।
स्मरों-स्मरुँ नित थुति करुँ, उर-मैं करुँ-विराज ॥ १॥
अपार-गुण के गुरु रहे, अगुरु-गन्ध-अनगार।
पार-पहुँचने नित-नमूँ , प्रणाम-बारम्बार ॥ २॥
नमू-भारती[1] भ्रम-मिटे, ब्रह्म-बनूँ मै-बाल ।
भार रहित ''भारत बने'', भास्वत-भारत-भाल ॥ ३ ॥
''आदिम-तीर्थंकर'' प्रभु, आदिनाथ मुनि-नाथ ।
आधि व्याधि अघ[2] मद मिटे, तुम पद में मम माथ ॥ ४॥
वृष का होता अर्थ है, दया मयी शुभ धर्म।
वृष[6] से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म ॥ ५ ॥
दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर[3] को देख।
सोया जीवन जागता , मिटता अघ अविवेक ॥ ६॥
शरण चरण है आपके, तारण तरण जहाज।
भव दधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज ॥ ७ ॥

श्री ऋषभनाथजी (कैलाश-पर्वत)

हार जीत से हो परे, हो अपने में आप।
बिहार करते अजित हो, यथा नाम गुण छाप ॥ ८॥
पुण्य पुंज हो पर नहीं, पुण्य फलों में लीन।
पर पर पामर[4] भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन ॥ ९ ॥
जित इन्द्रिय जित मद बनें, जितभव विजित कषाय।
''अजितनाथ'' को नित नमूँ, अर्जित दुरित[5] पलाय ॥ १० ॥

(१. जिनवाणी, २. पाप, ३. सूर्य, ४. पागल, ५. खोटे कार्य, ६. धर्म)

कोपल पल पल को पलें, वन में ऋतु-पति[1] आय।
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिनपद पाय ॥ ११ ॥

श्री अजितनाथ भगवान (सिद्धवर-कूट)

भव-भव-भव वन भ्रमित हो, भ्रमता भ्रमता आज।
"संभव जिन" भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज ॥१२॥

क्षण-क्षण मिटते द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम।
चिर[2] से हैं चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम ॥ १३ ॥

परमारथ[3] का कथन यूँ, मथन किया स्वयमेव।
यतिपन[4] पाले यतन से, नियमित यदि हो देव ॥ १४ ॥

तुम पद पंकज से प्रभु, झर-झर झरी पराग।
जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद[6] जाग ॥ १५ ॥

श्री संभवनाथ भगवान (धवल-कूट)

गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म-की हानि।
गुरु कहते गुण गौण हो, किस विध सुख हो प्राणि ॥ १६ ॥

चेतन वश तन शिव[5] बने, शिव बिन तन शव होय ।
शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय ॥ १७ ॥

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत ।
विषय बना ऋषि-ईश को, गाऊँ उनका गीत ॥ १८ ॥

गुण धारुँ पर मद-नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
"अभिनन्दन जिन" नित नमुँ, मुनि बन में भवभीत ॥ १९ ॥

श्री अभिनन्दन भगवान (आनन्द-कूट)

बचूँ-अहित से हित करुँ, पर न लगा हित-हाथ ।
अहित साथ न छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन रात ॥ २० ॥

बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग।
चारों-गतियाँ बिगड़ती, पा अघ-मति संसर्ग ॥ २१ ॥

"सुमतिनाथ" प्रभु-सुमति हो, मम-मति है अतिमंद ।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द ॥ २२ ॥

तुम जिन-मेघ-मयूर-मैं, गरजो बरसो नाथ ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ ॥ २३ ॥

श्री सुमतिनाथ भगवान (अविचल-कूट)

(१. बसन्त ऋतु, २. बहुत समय, ३. धर्म, ४. मुनि जीवन, ५. मोक्ष धाम, ६. भौंरा)

निरी-छठा[6] ले तुम छठे, तीर्थंकरों में आप ।
निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप-संताप ॥ २४ ॥

हीरा-मोती पद्म[1] ना, चाहूँ तुमसे नाथ ।
तुम सा तम-तामस मिटे, सुखमय बनूँ प्रभात ॥ २५ ॥

शुभ्र-सरल तुम बाल तव, कुटिल कृष्ण तम नाग ।
तव चिति-चित्रित ज्ञेय[3] से, किन्तु न उसमें दाग ॥ २६ ॥

विराग "पद्म-प्रभु" आपके दोनों पाद-सराग ।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग ॥ २७ ॥

श्री पद्म प्रभ भगवान (मोहन-कूट)

यथा सुधाकर[2] खुद सुधा, बरसाता बिन-स्वार्थ ।
धर्मामृत बरसा-दिया, मिटा जगत का आर्त[8] ॥ २८ ॥

दाता देते दान-हैं, बदले की ना चाह ।
चाह दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह ॥ २९ ॥

अबंध भाते काट के, वसु[4]विधविधी का बंध ।
"सुपार्श्व-प्रभु" निज-प्रभुपना, पा पाये आनन्द ॥ ३० ॥

बाँध-बाँध विधि बन्ध मैं, अन्ध बना मतिमन्द ।
ऐसा बल-दो अंध को, बन्धन तोड़ूँ द्वंद ॥ ३१ ॥

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान (प्रभास-कूट)

सहन कहाँ तक अब करुँ, मोह-मारता डंक ।
दे दो इसको शरण ज्यों, माता-सुत को अंक[5] ॥ ३२ ॥

कौन पूजता मूल्य-क्या, शून्य रहा बिन-अंक[7] ।
आप-अंक हैं शून्य-मैं, प्राण-फूँक दो शंख ॥ ३३ ॥

चन्द्र-कलंकित किंतु हो, "चन्द्रप्रभ-अकलंक" ।
वह हो शंकित-केतु से, शंकर तुम निःशंक ॥ ३४ ॥

रंक[9] बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक ।
जाप जपूँ जिन-नाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥ ३५ ॥

श्री चन्द्रप्रभ भगवान (ललित-कूट)

(१. कमल (असंख्यात), २. चन्द्रमा, ३. जानने योग्य, ४. आठ कर्म, ५. आँचल, ६. अनोखी आभामंडल, ७. संख्या (गिनती), ८. दुख, ९. भिकारी)

"सुविध" ! सुविधि[1] के पूर हो, विधि से हो अति दूर ।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर ॥ ३६ ॥
किस वन-की मूली[2]-रहा, मैं तुम गगन-विशाल ।
दरिया में खस-खस रहा, दरिया मौन-निहार ॥ ३७ ॥
फिर किस विध-निरखूँ तुम्हें, नयन करुँ विस्फार[3] ।
नाचूँ-गाऊँ ताल दुँ, किस भाषा में ढाल ॥ ३८ ॥
बाल-मात्र भी ज्ञान-ना, मुझमें मैं मुनि-वाल ।
बवाल[4] भव का मम-मिटे, तुम पद में मम-भाल ॥ ३९ ॥

श्री पुष्पदन्त भगवान (सुप्रभ-कूट)

चिन्ता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर ।
अधिगम[5] में गहरे गये, अव्यय-सुख के पूर ॥ ४० ॥
युगों-युगों से युग-बना, विघ्न-अघों का गेह[6] ।
युग दृष्टा युग में रहें, पर ना अघ-से-नेह ॥ ४१ ॥
शीतल-चंदन है नहीं, शीतल-हिम ना नीर ।
"शीतल जिन" तव मत रहा, शीतल हरता-पीर ॥ ४२ ॥
सुचिर काल से मैं रहा, मोह-नींद से सुप्त ।
मुझे जगाकर, कर-कृपा, प्रभो करो-परितृप्त[7] ॥ ४३ ॥

श्री शीतलनाथ भगवान (विद्युतवर-कूट)

राग-द्वेष औ मोह ये, होते है कारण-तीन ।
तीन लोक में, भ्रमित यह, दीन-हीन अघ-लीन ॥ ४४ ॥
निज क्या ! पर क्या ! स्वपर क्या, भला बुरा बिन बोध ।
जिजीविषा[8] ले खोजता, सुख-ढ़ोता तन-बोझ ॥ ४५ ॥
अनेकान्त की कान्ति से, हटा-तिमिर एकान्त ।
नितान्त[9] हर्षित कर दिया, क्लान्त[10] विश्व को शान्त ॥ ४६ ॥

(१. सुकर्मो, २. जड़, ३. उघाड़ना, ४. जंजाल, ५. ज्ञान, ६. घर, ७. सन्तुष्ट, ८. जिज्ञासा, ९. अपार, १०. दुखी)

निःश्रेयस[4]-सुखधाम हो, "हे जिनवर ! श्रेयाँस" ।
तव थुति अविरल मैं करुँ, जब लौ घट में श्वाँस ॥ ४७ ॥

श्री श्रेयांसनाथ भगवान (संकुल-कूट)

औ न दया-बिन धर्म ना, कर्म-कटे बिन धर्म ।
धर्म-मर्म तुम समझ-कर, कर लो अपना कर्म ॥ ४८ ॥
"वासुपूज्य-जिनदेव" ने, देकर यूँ-उपदेश ।
सबको उपकृत-कर दिया, शिव में किया प्रवेश ॥ ४९ ॥
वसुविध[5] मंगल-द्रव्य ले, जिन पूजो-सागार[1] ।
पाप-घटे फलतः फले, पावन-पुण्य अपार ॥ ५० ॥
बिना द्रव्य शुचि-भाव से, जिन पूजो मुनि-लोग ।
बिन निज शुभ-उपयोग के, शुद्ध-ना-हो उपयोग ॥ ५१ ॥

श्री वासुपूज्य भगवान (चम्पापुर जी)

काया-कारा[2] में पला, प्रभु तो कारातीत ।
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारा-तीत ॥ ५२ ॥
कराल[3]-काला व्याल-सम, कुटिल-चाल का काल ।
विष विरहित उसको किया, किया स्वप्न साकार ॥ ५३ ॥
मोह-अमल-वश समल-बन, निर्बल मैं भयवान ।
"विमलनाथ" तुम-अमल[6] हो, सम्बल दो भगवान ॥ ५४ ॥
ज्ञान-छोर तुम मै रहा, ना समझ की छोर ।
छोर पकड़कर झट-इसे, खींचो-अपनी ओर ॥ ५५ ॥

श्री विमलनाथ भगवान (सुवीर कूट)

आदि रहित सब-द्रव्य हैं, ना हो इसका-अन्त ।
गिनती इनकी अन्त से, रहित अनन्त-अनन्त ॥ ५६ ॥
कर्त्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म ।
सन्त बने अरिहन्त हो, जाना-पदार्थ धर्म ॥ ५७ ॥

(१. गृहस्थ, २. बंदीगृह, ३. काले कर्म, ४. मोक्ष, ५. अष्टद्रव्य सामग्री ६. निर्मल)

अनन्त-गुण पा कर दिया, अनन्त-भव का अन्त ।
अनन्त-सार्थक नाम-तव, "अनन्त-जिन" जयवन्त ॥५८॥
अनन्त-सुख पाने सदा, भव से हो-भयवन्त ।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरुँ स्मरें[1] सब सन्त ॥ ५९ ॥

श्री अनन्तनाथ भगवान (स्वयंभू-कूट)

जिससे-बिछुड़े जुड़-सकें, रुदन रुके-मुस्कान ।
तन गत चेतन[2] दिख सके, वही "धर्म" सुख-खान ॥६०॥
विरागता में राग हो, राग-नाग-विष त्याग ।
अमृत-पान चिर कर सकें, धर्म-यही झट-जाग ॥६१॥
दया-धर्म वर[3]-धर्म है, अदया भाव-अधर्म ।
अधर्म तज प्रभु धर्म-ने, समझाया पुनि-धर्म ॥ ६२ ॥
धर्मनाथ को नित-नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म ।
धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम-कर्म ॥ ६३ ॥

श्री धर्मनाथ भगवान (सुदत्तवर-कूट)

सकल-ज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश ।
विकल रहे, जड़ देह से, विमल नमूँ नत-शीश ॥ ६४ ॥
कामदेव हो काम से, रखते कुछ ना काम ।
काम रहे ना कामना, तभी बने सब-काम ॥ ६५ ॥
बिना कहे कुछ आपने, प्रथम किया-कर्त्तव्य ।
त्रिभुवन-पूजित आप्त[4] हो, प्राप्त किया-प्राप्तव्य[5] ॥६६॥
"शान्तिनाथ" हो शान्त कर, सातासाता-सान्त ।
केवल[6]-केवल ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वाँत ॥६७॥

श्री शान्तिनाथ भगवान (कुंद-प्रभ कूट)

ध्यान-अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप-परिताप ।
"कुंथुनाथ" पुरुषार्थ से, बने-न अपने-आप ॥ ६८ ॥

(१. ध्यान करें, २. आत्मा, ३. श्रेष्ठ, ४. सुख, ५. अरिहन्त, ६. लक्ष्य, ७. मात्र)

उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार ।
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार ॥ ६९ ॥
दीन-दयाल प्रभु रहे, करुणा के अवतार ।
नाथ-अनाथों के रहे, तार[1] सको तो-तार ॥ ७० ॥
ऐसी मुझपे हो-कृपा, मम[2]-मन-मुझ-में आय ।
जिस विध पल[3] में लवण है, जल में घुल-मिल जाये ॥७१॥

श्री कुन्थुनाथ भगवान (ज्ञानधर-कूट)

चक्री हो पर-चक्र के, चक्कर-में ना आय ।
मुमुक्षु पन जब जागता, बुभुक्षु-पन भग-जाय ॥ ७२ ॥
भोगों का कब-अन्त है, रोग भोग-से होय ।
शोक रोग में हो अतः, काल-योग[4] का रोय ॥ ७३ ॥
नाम-मात्र भी नहिं रखो, नाम-काम से काम ।
ललाम आतम में करो, विराम आठों-याम[5] ॥ ७४ ॥
नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरुँ अविराम ।
अनाम बन शिवधाम में, काम-बनूँ कृत-काम ॥ ७५ ॥

श्री अरनाथ भगवान (नाटक-कूट)

क्षार-क्षार भर है भरा, रहित-सार संसार।
मोह उदय से लग रहा, सरस-सार संसार ॥ ७६ ॥
बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग-बहिरंग ।
गहरी-गहरी हो नदी, उठती नहीं-तरंग ॥ ७७ ॥
मोह-मल्ल को मार-कर, "मल्लिनाथ-जिनदेव" ।
अक्षय-बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वय-मेव ॥ ७८ ॥
बाल-ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग ।
किसी वस्तु से राग-ना, तुम पद से मम-राग ॥ ७९ ॥

श्री मल्लिनाथ भगवान (संबल-कूट)

(१. पार लगाना, २. क्षण मात्र, ३. खोटे गृह, ४. दिनरात्री, ५. मेरा)

निज में यति[1] ही नियति-है, ध्येय 'पुरुष' पुरुषार्थ ।
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ-यथार्थ ॥ ८० ॥
लौकिक-सुख पाने कभी, श्रमण[2] बनो मत भ्रात।
मिले धान्य जब कृषि करे, घास[3]-आप मिल-जात ॥ ८१ ॥
मुनि-बन मुनिपन में-निरत, हो मुनि-यति बिन-स्वार्थ।
मुनि व्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ[3] ॥ ८२ ॥
मात्र-भावना मम रही, मुनिव्रत-पाल यथार्थ ।
मैं भी ''मुनिसुव्रत'' बनूँ, पावन-पाय पदार्थ ॥ ८३ ॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान (निर्जर-कूट)

मात्र-नग्नता को नहिं, माना- प्रभु शिव-पंथ।
बिना नग्नता भी नहीं, पावों पद अरहन्त ॥ ८४ ॥
प्रथम हटे छिलका[4]-तभी, लाली हटती भ्रात।
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तव मुख में भात[5] ॥ ८५ ॥
अनेकान्त का दास-हो, अनेकान्त-की सेव।
करुँ-गहूँ मैं शीघ्र से अनेक गुण स्वयमेव ॥ ८६ ॥
अनाथ मैं जगनाथ हो, ''नमिनाथ'' दो-साथ ।
तव-पद[6] में दिन रात हूँ, हाथ-जोड़ नत-माथ ॥ ८७ ॥

श्री नमिनाथ भगवान (मित्रधर-कूट)

राज-तजा राजुल-तजी, श्याम-तजा-बलिराम ।
नाम-धाम धन-मन तजा, ग्राम-तजा संग्राम ॥ ८८ ॥
मुनि-बन-वन में तप-सजा, मन पर लगा-लगाम ।
ललाम-परमातम-भजा, निज में किया-विराम ॥ ८९ ॥
नील-गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नीलकमल आसीन हो, नीलम से अति नील ॥ ९० ॥

(१. विश्राम, २. साधु, ३. धन्य, ४. धान्य का कवच, ५. चावल, ६. चरणों, ७. पलाल)

शील-झील में तैरते, ''नेमि-जिनेश''-सलील ।
शील-डोर मुझे बांध दो, डोर-करो मत-ढील ॥ ९१ ॥

श्री नेमिनाथ भगवान (उर्ज्यन्त पर्वत)

रिपुता-की सीमा-रही, गहन-किया उपसर्ग[1] ।
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग[2] ॥ ९२ ॥
क्या-क्यों किस-विध कब-कहें, आत्म-ध्यान की बात।
पल में मिटती-चिर बसी, मोह-अमा[3] की रात ॥ ९३ ॥
खास-दास की आस[4]-बस, श्वॉस-श्वॉस पर वास।
''पार्श्व'' करो मत-दास को, उदासता का दास ॥ ९४ ॥
ना तो सुर-सुख चाहता, शिव-सुख की ना चाह।
तव थुति-सरवर[5] में सदा, होवे मम-अवगाह ॥ ९५ ॥

श्री पार्श्वनाथ भगवान (स्वर्णभद्र-कूट)

क्षीर[6] रहो प्रभु-नीर मैं, विनती करुँ-अखीर ।
नीर-मिला लो क्षीर-में, और बना दो-क्षीर ॥ ९६ ॥
अबीर-हो तुम वीर, भी धरते-ज्ञान-शरीर ।
सौरभ-मुझ में भी-भरो, सुरभित करो-समीर ॥ ९७ ॥
नीर-निधि से धीर-हो, ''वीर'' बनें-गंभीर ।
पूर्ण-तैर-कर पा लिया, भवसागर का-तीर ॥ ९८ ॥
अधीर-हूँ मुझे धीर-दो, सहन-करुँ सब-पीर ।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्तर की तस्वीर ॥ ९९ ॥

श्री महावीर भगवान (पावापुर-सरोवर)

❖❖❖

(१. विघ्न, २. मोक्ष, ३. घनांधकार, ४. आशा, ५. तालाव, ६. दूध)

गुरु भक्ति-भजन

गुरुवर तुम्ही बता दो किसकी शरण में जाये ..
किसकी शरण मैं गिरकर मन की व्यथा सुनाऊँ।
गुरुवर तुम्ही...

अज्ञान के तिमिर ने चारों तरफ से घेरा
क्या रात हैं प्रलय की होगा नहीं सबेरा ।
पथ और प्रकाश दोनों चलने की शक्ति पाये...
गुरुवर तुम्ही...

जीवन के देवता का करते रहे निरादर
कैसे करें समर्पित जीवन के गिर निशाकर ।
यह पाप की गठरिया क्या खोलकर दिखाये...
गुरुवर तुम्ही...

दुष्वृत्तियों ने हमको घेरा कदम कदम पर
कभी काम क्रोध बनकर, कभी माया लोभ बनकर
इन दानवों से कैसे अपना गला छुड़ायें...
गुरुवर तुम्ही...

माना कपूत हम हैं क्या रुष्ट रह सकोगे !
मुस्कान प्यार अमृत क्या दे नहीं सकोगे !
दाता तुम्हारे दर से जाये तो किधर जाये...
गुरुवर तुम्ही बता दो किसकी शरण में जाये ..
किसकी शरण मैं गिरकर मन की व्यथा सुनाऊँ।

❖❖❖

गोम्मटेश् अष्टक (पद्यानुवाद)

(आ. श्री विद्यासागर जी महाकवी)

नीलकमल के दल-सम जिनके,युगल-सुलोचन विकसित हैं,
शशिसम मनहर सुखकर जिनका, मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है।
चम्पक की छवि शोभा जिनकी, नम्र नसिका ने जीती,
गोमटेश जिन-पाद पद्म की, पराग नित मम मति पीती ॥१॥

गोल-गोल दो कपोल जिन के, उजल सलिल सम छबि धारे।
ऐरावत-गज की सूण्डासम, बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे।
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश, वे नर्तन करते नन्दन हैं,
निरालम्ब वे नभ सम शुचिमम, गोमटेश को वन्दन है ॥ २॥

दर्शनीय तव मध्य भाग है, गिरि-सम निश्चल अचल रहा,
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से, हार गया वह विफल रहा ।
उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम, तुम पद में मन निवस रहा ॥३॥

विन्ध्याचल पर चढ़कर खरतर, तप में तत्पर हो बसते,
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के, शिखामणी तुम हो लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये, खिलते तुम पूरण शशि हो,
गोमटेश मम नमन तुम्हें हो, सदा चाह बस मन वशि हो ॥ ४॥

मृदुतम बेल लताएँ लिपटीं, पग से उर तक तुम तन में,
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो, भवि-जन को तुम त्रिभुवन में।
तुम पद-पंकज में अलि बन,सुर-पति गण करता गुन-गुन है,
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल, वन्दन अर्पित तन मन है ॥५॥

अम्बर तज अम्बर-तल थित हो, दिग् अम्बर नहिं भीत रहे,
अम्बर आदिक विषयन से, अति विरत रहे, भव भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर, अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो, धुलता मन का मैल रहे ॥ ६ ॥

आशा तुमको छू नहिं सकती, समदर्शन के शासक हो,
जग के विषयन में वाञ्छा नहिं, दोष मूल के नाशक हो।
भरत-भ्रात में शल्य नहिं, अब विगत राग हो रोष जला,
गोमटेश तुम में मम इस विध, सतत राग हो होत चला ॥७॥

काम-धाम से धन-कंचन से, सकल संग से दूर हुए,
शूर हुए मद मोह-मार कर, समता से भर-पूर हुए।
एक वर्ष तक एक थान थित, निराहार उपवास किये,
इसीलिए बस गोमटेश जिन, मम मन में अब वास किये ॥८॥

दोहा - नेमिचन्द्र गुरु ने किया, प्राकृत में गुण-गान।
गोमटेश थुति अब किया, भाषा-मय सुख खान ॥१॥

गोमटेश के चरण में, नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ भवसागर कर पार ॥ २ ॥

❖❖❖

धर्म यदि मन मुटाव का कारण बनता है
तो वह धर्म नहीं है,
उस धर्म से मानवता का कोई वास्ता नहीं है।

मंगल भावना (दोहा)

मंगल-मय जीवन बने, छा जाये सुख छाँव।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव ॥ १ ॥

"ही" से "भी" की ओर ही, बढ़े सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग ॥ २ ॥

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
हरी भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥ ३ ॥

मेरा तेरा पन मिटे, भेद भाव का नाश।
रीति नीति सुधरे सभी, वेद भाव में वास ॥ ४ ॥

उधम से तो दम घुटे, उद्यम से दम आय।
बनो दमी हो आदमी, कदम कदम जम जाय ॥ ५ ॥

मरहम पट्टी बांध कर, वृण का कर उपचार।
ऐसा यदि न बन सके, डंडा तो मत मार ॥ ६ ॥

नम्र बनो मानी नहीं, जीवन वरना मौत।
बेत बनो न बट बनो, सुर-शिवसुख का स्रोत ॥ ७ ॥

तन मन से औ वचन से, पर का कर उपकार।
रवि सम जीवन बस बने, मिलता शिव उपकार ॥ ८ ॥

दिखा रोशनी रोष न, शत्रु मित्र बन जाये।
भावों का बस खेल है, फूल शूल बन जाये ॥ ९ ॥

धोओ मन को धो सको, तन को धोना व्यर्थ।
खोओ गुण में खो सको, धन में खोना व्यर्थ ॥ १० ॥

निर्धनता वरदान है, अधिक धनिकता पाप ।
सत्य तथ्य की खोज मैं, निर्गुणता अभिशाप ॥ ११ ॥

अर्थ नही परमार्थ की, ओर बड़े भूपाल ।
पालक जनता के बने, बने नही भूचाल ॥ १२ ॥

दूषण न भूषण बनो, बनो देश के भक्त ।
उम्र बढ़े बस देश की, देश रहे अविभक्त ॥ १३ ॥

कब तक कितना पूंछ मत, चलते चल अविराम ।
रुको रुको यूँ सफलता, आप कहे यह धाम ॥ १४ ॥

गुण ही गुण पर में सदा, खोजूँ निज में दाग ।
दाग मिटे बिन गुण कहाँ, तामस मिटते राग ॥ १५ ॥

पंक नहीं पंकज बनूँ, मुक्ता बनूं न सीप ।
दीप बनूँ जलता रहूँ, प्रभु-पद-पद्म समीप ॥ १६ ॥

यही प्रार्थना वीर से, शान्ति रहे चहुँ ओर ।
हिलमिल कर सब एक हों, बढ़े धर्म की ओर ॥ १७ ॥

गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार ।
विद्यासागर कब बनूँ, भवसागर कर पार ॥ १८ ॥

धर्म धनिकता में सदा, देश रहे बलजोर ।
भवन वह बस चिर टिके, नींव नहीं कमजोर ॥ १९ ॥

गुरु चरणों की शरण मैं, प्रभु पर ही विश्वास ।
अक्षय सुख के विषय मैं, संशय का हो नाश ॥ २० ॥

❖❖❖

पूज्य-वंदना

सुरासरों से है सदा, पूजित जिनके पाद ।
पूज्यपाद को नित नमूँ, पाऊँ परम प्रसाद ॥ १ ॥

पूजयपाद गुरु पाद में, प्रणाम हो सौभाग्य ।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य ॥ २ ॥

दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख ।
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक ॥ ३ ॥

कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक ।
आप अंक है शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख ॥ ४ ॥

किस वन की मूली रहा, मैं तुम गगन विशाल ।
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार ॥ ५ ॥

शिवपथ नेता जितमना, इन्द्रिय जेता धीश ।
तथा प्रणेता शास्त्र के, जय-जय-जय-जगदीश ॥ ६ ॥

संत पूज्य अरहंत हो, यथाजात निर्ग्रन्थ ।
अन्त-हीन-गुणवन्त हो, अजेय हो जयवन्त ॥ ७ ॥

सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त ।
सिद्धों को शुभ नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त ॥ ८ ॥

सार सार दे शारदे, बनूँ विशारद धीर ।
सहार दे दे तार दे, उतार दे उस तीर ॥ ९ ॥

बनूँ निरापद शारदे, वर दे ना कर देर।
देर खड़ा कर जोड़ के, मन से बनूँ सुमेर ॥ १० ॥

नमूँ भारती तारती, उतारती उस तीर।
सुधी उतारे आरती, हरती खलती पीर ॥ ११ ॥

भार रहित मुझ भारती, कर दो सहित सुभाल।
कौन सँभाले माँ बिना, ओ माँ यह है बाल ॥ १२ ॥

शत-शत सुर-नर- पति करें, वन्दन शत-शत बार।
जिन बनने जिन चरण रज, लूँ मैं शिर पर धार ॥ १३ ॥

स्वयं तिरे ना तारती कभी अकेली नाव।
पूजा नाविक की करो, बने पूज्य तव नाव ॥ १४ ॥

प्रभु को लख हम जागते, वरना सोते घोर।
सूर्योदय प्रभु आप हैं, चन्द्रोदय है और ॥ १५ ॥

क्रूर भयानक सिंह भी, फना उठाते नाग।
तीर्थ जहाँ पर शांत हो, लपटों वाली आग ॥ १६ ॥

ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर।
छोर पकड़कर झट इसे, खीचों अपनी ओर ॥ १७ ॥

हीरा मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ।
तुम सा तम तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात ॥ १८ ॥

❖❖❖

नीति-अमृत

हाथ देख मत देख लो, मिला बाहुबल पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो, सुख पाओ सम्पूर्ण ॥ १ ॥

देख सामने चल अरे, दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता, उसको दिखता भूत ॥ २ ॥

उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्म बोध हो तुरंत ही, मुख संयम की ओर ॥ ३ ॥

कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप मंडूक।
बरसाती मेंढ़क नहीं, बरसो घन बन मूक ॥ ४ ॥

तत्त्व दृष्टि तज बुध नहीं, जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा, भ्रमर भ्रमित कब और ॥ ५ ॥

संत पुरुष से राग भी, शीघ्र मिटाता पाप।
ऊष्ण नीर भी आग को, क्या न बुझाता आप ॥ ६ ॥

लगाम अंकुश बिन नहीं, हय गय देते साथ।
व्रत श्रुत बिन मन कब चले, विनम्र करके माथ ॥ ७ ॥

भले कूर्म गति से चलो, चलो की ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को, पालो पल-पल और ॥ ८ ॥

खुला खिला हो कमल वह, जब लौं जल सम्पर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क ॥ ९ ॥

भू पर निगले नीर में, ना मेंढक को नाग।
निज में रह बाहर गया, कर्म दबाते जाग ॥ १० ॥

पेटी भर ना पेट भर, खेती कर नाऽऽखेट।
लोकतंत्र में लोक का, संग्रह हो भरपेट ॥ ११ ॥

सार-सार का ग्रहण हो, असार को फटकार।
नहीं चालनी तुम बनो, करो सूप सत्कार ॥ १२ ॥

मात्रा मौलिक कब रही, गुणवत्ता अनमोल।
जितना बढ़ता ढोल है, उतना बढ़ता पोल ॥ १३ ॥

दूर दिख रही लाल सी, पास पहुँचते आग।
अनुभव होता पास का, ज्ञान दूर का दाग ॥ १४ ॥

खिड़की से क्यों देखता, दिखे दुःखद संसार।
खिड़की में अब देख ले, मिले सुखद साकार ॥ १५ ॥

थक जाना ना हार है, पर लेना है श्वास।
रवि निशि में विश्राम ले, दिन में करे प्रकाश ॥ १६ ॥

यम दम शम सम तुम धरो, क्रमशः कम श्रम होय।
नर से नारायण बनो, अनुपम अधिगम होय ॥ १७ ॥

स्वीकृत हो मम नमन ये, जय-जय-जय-जयसेन।
जैन बना अब जिन बनूँ, मन रटता दिन रैन ॥ १८ ॥

हित-मित नियमित-मिष्ट ही, बोल वचन मुख खोल।
वरना सब संपर्क तज, समता में जा खोल ॥ १९ ॥

स्वर्ण पात्र में सिंहणी, दुग्ध टिके नाऽन्यत्र।
विनय पात्र में शेष भी, गुण टिकते एकत्र ॥ २० ॥

❖❖❖

शिक्षाप्रद-दोहावली

सागर का जल-क्षार क्यो, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि हैं, रुचिकर श्रम उपकार ॥ १ ॥

उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पांडव होय ॥ २ ॥

नहीं सर्वथा व्यर्थ हैं, गिरना ही परमार्थ।
देख गिरे को हम जगे, सही करे पुरुषार्थ ॥ ३ ॥

कौरव रव रव मैं गये, पांडव क्यों शिवधाम।
स्वार्थ और परमार्थ का, और कौन परिणाम ॥ ४ ॥

भूल नहीं पर भूलना, शिवपथ मैं वरदान।
भूल नदी गिरी को करे, सागर का संधान ॥ ५ ॥

दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पर।
आश्रय दो, धन अभय दो, आश्रय से जो दूर ॥ ६ ॥

सूरज दूरज हो भले, भरी गगन मैं धूल।
पर सर मैं नीरज खिले, धीरज हो भरपूर ॥ ७ ॥

ईश दूर पर मैं सुखी आस्था लिये अभंग।
स-सूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़े पतंग ॥ ८ ॥

प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा, तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये, मिले सार पर्मार्थ ॥ ९ ॥

अन्त किसी का कब हुआ, अनंत सब है सन्त।
पर सब मिटता सा लगे, पतझड़ पुनः वसन्त ॥ १० ॥

ज्ञायक बन गायक नही, पाना है विश्राम।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिवधाम ॥ ११ ॥

सुक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उसका नहीं अभाव।
तारा राजी रात मैं, दिन मैं नहीं दिखाव ॥ १२ ॥

लघु कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ स्थूल।
क्यों मत पूछो तर्क से, स्वभाव रहता दूर ॥ १३ ॥

कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्पकाल भी मौन ले, चलता अन्तर्जल्प ॥ १४ ॥

सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।
ऊषा सम-नर-जन्म है, जाग सके तो जाग ॥ १५ ॥

दिन का हो या रात का, सपना सपना होय।
सपना अपना सा लगे, किन्तु न अपना होय ॥ १६ ॥

दोष रहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाये।
चरण धूल तक सर चढ़े, मरण पूज्य बन जाये ॥ १७ ॥

एक साथ दो बैल तो, मिलकर खाते घास।
लोकतंत्र पा क्यो लड़ो, क्यो आपस में त्रास ॥ १८ ॥

बूंद बूंद के मिलन से जल में गति आ जाये।
सरिता बन सागर मिले, सागर बूंद समाय ॥ १९ ॥

❖❖❖

सिद्ध-भक्ति

(ज्ञानोदय छन्दः)

जिनके शुचि गुण परिचय पाकर वैसा बनने उद्यत हूँ
विधि मल धो-धो, निजपन साधा वन्दू सिद्धों को नत हूँ।
निजी योग्यता बाह्य योग से कनक कनकपाषाण यथा
शुचि गुण-नाशक दोष नशन से आत्मसिद्धि वरदान तथा ॥ १ ॥

गुणाभाव यदि अभाव निज का सिद्धि रही, तप व्यर्थ रहे
सुचिर-बद्ध यह विधि फल - भोक्ता कर्मनष्ट कर अर्थ गहे।
ज्ञाता-द्रष्टा स्वतन बराबर फैलन-सिकुड़शाली है
ध्रुवोत्पादव्यय गुणीजीव है यदि न, सिद्धि सो जाली है ॥ २ ॥

बाहर-भीतर यथाजात हो रत्नत्रय का खंग लिए
घाति कर्म पर महाघात कर प्रकटे रवि से अंग लिए।
छतर चॅवर भासुर भामण्डल समवसरण पा आप्त हुए,
अनन्त दर्शन बोध वीर्य सुख समकित गुण चिर साथ हुए ॥ ३ ॥

देखें जाने युगपत् सब कुछ सुचिर काल तक ध्वान्त हरें
परमत-खण्डन जिनमत मण्डन करते जन-जन शान्त करें।
निज से निज में निज को निज ही बने स्वयं-भू वरत रहे
ज्योति पुंज की ज्ञानोदय यह जय-जय-जय-जय करत रहे ॥ ४॥

जड़ें उखाड़ी अघातियों की सुदूर फैली चेतन में
हुए सुशोभित सूक्ष्मादिक गुण अनन्त क्षायिक वे क्षण में।
और और विधि विभाव हटते-हटते अपने गुण उभरे
ऊर्ध्व स्वभावी अतः समय में लोक शिखर पर जा ठहरे ॥ ५ ॥

नूतन तक का कारण छूटा, मिला हुआ कुछ कम उससे
सुन्दर प्रतिछवि लिए सिद्ध हैं अमूर्त दिखते ना दृग से ।
भूख-प्यास से रोग-शोक से राग-रोष से मरणों से,
दूर दुःख से शिव सुख कितना कौन कहे जड़ वचनों से ॥ ६ ॥

घट-बढ़ ना हो विषय-रहित है प्रतिपक्षी से रहित रहा,
निरुपम शाश्वत सदा सदोदित सिद्धों का सुख अमित रहा।
निज कारण से प्राप्त अबाधित स्वयं सातिशय धार रहा
पर-निरपेक्षित परमोत्तम है अन्त - हीन वह सार रहा ॥ ७ ॥

श्रम निद्रा जब अशुचि मिटी है शयन सुमन आदिक से क्या ?
क्षुधा मिटी है तृषा मिटी है सरस अशन आदिक से क्या ?
रोग शोक की पीर मिटी है औषध भी अब व्यर्थ रहा ?
तिमिर मिटा सब हुआ प्रकाशित दीपक से क्या अर्थ रहा? ॥ ८ ॥

महायशस्वी महादेव हैं बने कठिन तपघर्षण से ।
संयम-यम-नियमों से नय से आत्म बोध से दर्शन से
हुये हो रहे होंगे वन्दित सुधी जनों से सिद्ध महा
उन सम बनने तीनों सन्ध्या उन्हें नमूं कर-बद्ध यहाँ ॥ ९ ॥

दोहा : सिद्ध गुणों की भक्ति का करके कायोत्सर्ग ।
आलोचन उसका करुं ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥ १० ॥

समदर्शन से साम्य बोध से समचारित से युक्त हुए
दुष्ट धर्म से पुष्ट हुए जो अष्ट कर्म से मुक्त हुए ।
सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों से मुख्य रुप से विलस रहे
उर्ध्व-स्वभावी बने तुरत जा लोक शिखर पर निवस रहे ॥ ११ ॥

विगत अनागत आगत के यूँ कुछ तो तप से सिद्ध हुए
कुछ संयम से कुछ तो नय से कुछ चारित से सिद्ध हुए ।
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल करकर निज मन को,
पूजूं वन्दूं अर्चन कर लुं नमन करुँ-सब सिद्धन को ॥ १२ ॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो ।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ! ॥

❖❖❖

* जीवन के प्रमुख बिन्दु *

सर्वोत्तम दिवस - **आज**

सबसे उत्तम समय - **अब ही**

सबसे बड़ी आवश्यकता - **सम्यक् ज्ञान**

सबसे बड़ी भूल - **समय की बर्बादी**

सबसे बड़ी बाधा - **अधिक बोलना**

सबसे बुरी भावना - **ईर्ष्या करना**

सबसे बड़ा दिवालियापन - **स्वयं निरुत्साहित होना**

आचार्यभक्ति

(ज्ञानोदय छन्दः)

सिद्ध बने शिव-शुद्ध बने जो जिन की थुति में निरत रहे,
दावा-सम अति-कोप अनल को शान्त किये अति-विरत रहे।
मनो-गुप्ति के वचन-गुप्ति के काय-गुप्ति के धारक हैं
जब जब बोले सत्य बोलते भाव शुद्ध-शिव साधक हैं ॥ १ ॥

दिन दुगुणी औ रात चउगुणी मुनि पद महिमा बढ़ा रहे,
जिन-शासन के दीप्त दीप हो और उजाला दिला रहे।
बद्ध-कर्म के गूढ़ मूल पर घात लगाते कुशल रहे
ऋद्धि सिद्धि परिसिद्धि छोड़कर शिवसुख पाने मचल रहे ॥ २ ॥

मूल गुणों की मणियों से है जिनकी शोभित देह रही
षड् द्रव्यों का निश्चय जिनको जिनमें कुछ संदेह नहीं।
समयोचित आचरण करें हैं प्रमाद के जो शोषक हैं
समदर्शन से शुद्ध बने हैं निज गुण तोषक, पोषक हैं॥ ३ ॥

पर-दुख-कातर सदय हृदय जो मोह-विनाशक तप धारे
पंच-पाप से पूर्ण परे हैं पले पुण्य में जग प्यारे।
जीव जन्तु से रहित थान में वास करे निज कथा करें
जिनके मन में आशा ना है दूर कुपथ से तथा चरे ॥ ४ ॥

बड़े बड़े उपवासादिक से दण्डित ना बहुदण्डों से
सुडोल सुन्दर तन मन से हैं मुख मण्डल-कर-डण्डों से।
जीत रहे दो - बीस परीषह किरिया - करने योग्य करे
सावधान संधान ध्यान से प्रमाद हरने योग्य, हरे ॥ ५ ॥

नियमों में हैं अचल मेरुगिरि कन्दर में असहाय रहे
विजितमना हैं जित-इन्द्रिय हैं जितनिद्रक जितकाय रहे
दुस्सह दुखदा दुर्गति-कारण लेश्याओं से दूर रहे
यथाजात हैं जिन के तन हैं जल्ल-मल्ल से पूर रहे ॥ ६ ॥

उत्तम-उत्तम-भावों से जो भावित करते आतम को
राग लोभ मात्सर्य शाठ्य मद को तजते हैं अघतम को।

नहीं किसी से तुलना जिनकी जिनका जीवन अतुल रहा
सिद्धासन मन जिनके, चलता आगम मन्थन विपुल रहा ॥ ७॥

आर्तध्यान से रौद्रध्यान से पूर्णयत्न से विमुख रहे
धर्मध्यान में शुक्लध्यान में यथायोग्य जो प्रमुख रहे।
कुगति मार्ग से दूर हुये हैं सुगति ओर गतिमान हुये
सात ऋद्धि रस गारव छोड़े पुण्यवान् गणमान्य हुये ॥ ८ ॥

ग्रीष्म काल में गिरि पर तपते वर्षा में तरुतल रहते,
शीतकाल आकाश तले रह व्यतीत करते अघ दहते।
बहुजन हितकर चरित धारते पुण्य पुंज हैं अभय रहे
प्रभावना के हेतुभूत उन महाभाव के निलय रहे ॥ ९ ॥

इस विध अगणित गुणगण से जो सहित रहे हितसाधक हैं
हे जिनवर ! तव भक्तिभाव में लीन रहे गण धारक हैं।
अपने दोनों कर-कमलों को अपने मस्तक पर धरके
उनके पद कमलों में नमता बार-बार झुक-झुक करके ॥ १० ॥

कषायवश कटु-कर्म किये थे जन्म करण से युक्त हुए।
वीतरागमय आत्म-ध्यान से कर्म नष्ट कर मुक्त हुये।
प्रणाम उनको भी करता हूँ अखण्ड अक्षय-धाम मिले
मात्र प्रायोजन यहीं रहा है सुचिर काल विश्राम मिले ॥ ११ ॥

दोहा : मुनिगण-नायक भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करुं ! ले प्रभु तव संसर्ग॥ १२ ॥

पंचाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा,
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य महा।
उपाध्याय उपदेश सदा दें, चरित बोध का शिवपथ का,
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का ॥ १३ ॥

भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर कर निजमन को,
वंदू पूजूं अर्चन कर लूँ नमन करुँ मैं गुरुगण को।
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधीलाभ हो सद्गति हो,
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ॥ १४ ॥

❖❖❖

पंच महा-गुरुभक्ति

(आचार्य श्री विद्यासागर महाकवि महाराज द्वारा रचित)

(चौपाई-छन्दः)

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियां कई हजारा।
मणि की द्युति-जल से धुलते है, प्रभु पद-नमता सुख फ़लते है॥१॥

सम्यक्त्वादिक वसु-गुण-धारे, वसु-विध विधि-रिपु नाशन हारे।
अनेक सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता-समता हूँ ॥ २ ॥

श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सुरीश्वर के पद कमलों को, शिर पर रख लुँ दुख-दलनों को॥ ३ ॥

उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन-झरते
उपाध्याय ये सुमरण कर-लूँ, पाप नष्ट हो सुमरण कर-लूँ ॥ ४॥

समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं ॥ ५ ॥

विमल गुणालय-सिद्धजनों को, उपदेशक मुनि-गणी-गुणों को।
नमस्कार पद पंच इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से ॥ ६ ॥

सिद्ध शुद्ध हे जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता ॥ ७ ॥

नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल - मात्र यही है ॥ ८ ॥

सिद्धों को जिनवर चन्दों को, गण नायक पाठक वृन्दों को ।
रत्नात्रय को साधु-जनों को, वन्दूँ पाने उन्ही गुणों को ॥ ९ ॥

सुरपति चूडामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे ॥ १० ॥

महाप्रतिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्टमातृकाओं से गणि की, शिष्यों के उपदेशक गण की।
वसु विध योगांगो से मुनि की, करुँ सदा थुति शुचि से मन की ॥ ११ ॥

❊ अञ्चलिका ❊

दोहा : पंच महागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करुँ, ले प्रभु तव संसर्ग ॥

(ज्ञानोदय छन्दः)

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगिनत गुणगण मण्डित हैं।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित, जिनवर पण्डित पण्डित है॥ १२ ॥

पँचाचारों रत्नत्रय से, शोभित हैं आचार्य महा॥
शिवपथ चलते और चलाते, औरों को भी आर्य यहाँ ॥ १३ ॥

उपाध्याय उपदेश सदा दें, चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नात्रय पालन में रत हो, साधु सहारा जिनमत का ॥

भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर - कर निज मन को ।
वन्दू पूंजू अर्चन कर लूँ, नमन करु उन मुनिगण को ॥ १४ ॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो सद्गति हो ।
वीर मरण हो जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ ! ॥ १५ ॥

❖❖❖

श्री योगभक्ति

(ज्ञानोदय छन्दः)

नरक-पतन से भीत हुये हैं जाग्रत-मति हैं मथित हुये
जनन-मरण मय शत-शत रोगों से पीड़ित हैं व्यथित हुये ।
बिजली बादल-सम वैभव है जल-बुदबुद-सम जीवन है
यूं चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है ॥ १ ॥
गुप्ति-समिति-व्रत से संयुत जो, मन शिव-सुख की ओर रहा
मोहभाव के प्रबल-पवन से, जिनका मन ना डोल रहा ।
कभी ध्यान में लगे हुए तो, श्रुत-मन्थन में लीन कभी
कर्म-मलों को धोना है सो, तप करते स्वाधीन सुधी ॥ २ ॥
रवि-किरणों से तपी-शिला पर, सहज विराजे मुनिजन हैं
विधि-बन्धन को ढीले करते, जिनका मटमैला तन है ।
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख, मुख करते हैं तप तपते
ममत्व मत्सर मान रहित हो, बने दिगम्बर-पथ नपते ॥ ३ ॥
दिवस रहा हो रात रही हो, बोधामृत का पान करें
क्षमा नीर से सिंचित जिनका, पुण्यकाय छविमान अरे !
धरे छत्र-संतोष भाव के, सहज छाँव का दान करें
यूं सहते मुनि तीव्र-ताप को, ज्ञानोदय गुणगान करें ॥ ४ ॥
मोर कण्ठ या अलि-सम काले, इन्द्र धनुष युत बादल हैं
गरजे बरसे बिजली तड़की, झंझा चलती शीतल है ।
गगन दशा को देख निशा में, और तपोधन तरु-तल में
रहते सहते कहते कुछ ना, भीति नहीं मानस-तल में ॥ ५ ॥
वर्षा ऋतु में जल की धारा, मानो बाणों की वर्षा
चलित चरित से फिर भी कब, हो करते जाते संघर्षा
वीर रहे नर-सिंह रहे, मुनि ! परिषह रिपु को घात रहे
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं, इनके पद में माथ रहे ॥ ६ ॥

अविरल हिमकण जल से जिनकी, काय-कान्ति ही चली गई
सॉय-सॉय कर चली हवायें, हरियाली सब जली गई।
शिशिर तुषारी घनी निशा को, व्यतीत करते श्रमण यहाँ
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं, गगन तले भू-शयन अहा ! ॥ ७ ॥
एक वर्ष में तीन-योग ले, बने पुण्य के वर्धक हैं
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध, तप तपते हैं मद-मर्दक हैं।
परमोत्तम आनन्द मात्र के, प्यासे भदन्त ये प्यारे
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित, समाधि हम में बस डारे ॥ ८ ॥
ग्रीष्मकाल में आग बरसती, गिरि-शिखरों पर रहते हैं ।
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह, तरु तल रहकर सहते हैं।
तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं
वन्द्य साधु ये वन्दन करता, दुर्लभ-दर्शन होते हैं ॥ ९ ॥

दोहा : योगीश्वर सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग ॥
आलोचन उसका करुँ ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥ १० ॥
अर्ध सहित दो द्वीप तथा, दो सागर का विस्तार जहाँ।
कर्म-भूमियाँ-पन्द्रह जिनमें, संतों का संचार रहा ॥
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ, आतापन का योग धरें।
मौन-धरें वीरसन आदिक का, भी जो उपयोग करें ॥ ११ ॥
बेला-तेला-चोला-छहला, पक्ष मास छह मास तथा।
मौन रहें उपवास करें है, करें न तन की दास कथा ॥
भक्ति भाव से चाव शक्ति से, निर्मल कर निज मन को।
वँदूं पूँजूं अर्चन कर लूं, नमन करुं इन मुनि जन को ॥ १२ ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ! ॥

❖❖❖

श्री शान्तिभक्ति

(ज्ञानोदय छन्दः)

नहीं स्नेह वश तव पद शरणा गहते भविजन पामर हैं
यहाँ हेतु है बहु-दुःखों से भरा हुआ भव-सागर है।
धरा उठी जल ज्येष्ठ काल है भानु उगलता आग कहीं
करा रहा क्या छाँव शशी के जल के प्रति अनुराग नहीं ? ॥१॥

कुपित कृष्ण-अहि जिसको डसता फैला हो वह विष तन में
विद्या औषध हवन मन्त्र जल से मिट सकता है क्षण में।
उसी भांति जिन तुम पद-कमलों की थुति में जो उद्यत है
पाप शमन हो रोग-नष्ट हो चेतन तन के संगत है ॥ २ ॥

कनक मेरु आभा वाले या तप्त-कनक की छवि वाले
हे जिन ! तुम पद नमते मिटते दुस्सह दुख हैं शनि वाले।
उचित रहा रवि उषाकाल में उदार उर ले उगता है
बहुत जनों के नेत्रज्योति-हर सघन-तिमिर भी भगता है ॥३॥

सब पर विजय बना तना है नाक-मरोड़ा दम-तोड़ा
देवों-देवन्द्रों को मारा नरपति को भी ना छोड़ा।
दावा बन कर काल घिरा है उग्र रुप को धार घना
कौन बचावे? हमें कहो जिन! तव पद थुति नद-धार बिना ॥४॥

लोकालोका-लोकित करते ज्ञानमूर्ति हो जिनवर हे !
बहुविध मणियां जड़ी दण्ड में तीन छत्र शित तुम सर पे।
हे जिन ! तव पद-गीत धुनी सुन रोग मिटे सब तन मन के
दाड़ उघाड़े सिंह दहाड़े गजमद गलते वन-वन के ॥ ५ ॥

तुम्हे देवियां अथक देखती विभव मेरु पर तव गाथा
बाल भानु की आभा हरता मण्डल तव जन जन भाता।

हे जिन ! तव पद थुति से ही सुख मिलता निश्चय अटल रहा
निराबाध नित विपुलसार है अचिंत्य अनुपम अटल रहा ॥ ६ ॥

प्रकाश करता प्रभा पुंज वह भास्कर जब तक ना उगता
सरोवरों मैं सरोजदल भी तब तक खिलता ना जगता।
जिसके मानस सर मैं जब तक जिनपद पंकज ना खिलता ,
पाप भार का वहन करे वह भ्रमण भवों मैं ना टलता ॥ ७ ॥

प्यास शान्ति की लगी जिन्हें है तव पद का गुणगान किया,
शान्तिनाथ जिन शान्त भाव से परमशान्ति का पान किया,
करुणा कर ! करुणा कर मुझको प्रसन्नता में निहित करो,
भक्ति मग्न है भक्त आपका दृष्टि दोष से रहित करो ॥ ८ ॥

शरद शशितम शीतल जिनका नयन मनोहर आनन है,
पूर्ण शील के व्रत संयम के अमितगुणों के भाजन हैं।
शत वसु-लक्षण से मंडित है जिनका औदारिक-तन है।
नयन कमल है जिनवर जिनके शान्तिनाथ को वन्दन हैं ॥९॥

चक्रधरों मैं आप चक्रधर पंचम हैं गुण मंडित हैं,
तीर्थंकरों मैं सोलहवें जिन सुर-नरपति से वन्दित है।
शान्तिनाथ हो विश्वशान्ति हो भांति भांति की भ्रांति हरो
प्रणाम ये स्वीकार कर-लो किसी भाँति मुझ कान्ति-भरो ॥१०॥

दुंदुभि बजते जन - मन - हरते,
आतप हरते चामर ढुरते ।
भामण्डल की आभा भारी,
सिंहासन की छटा निराली ॥ ११ ॥

अशोक तरु सो शोक मिटाता,
भाविक-जनों से ढोक दिलाता ।
योजन तक-जिन घोष फैलता,
समवशरण मैं तोष तैरता ॥ १२ ॥

झुका-झुका कर मस्तक से मैं शान्तिनाथ को नमन करुँ,
देव जगत भूदेव जगत से वन्दित पद मैं रमण करुँ।
चराचरों को शान्तिनाथ वे परम शान्ति का दान करें
थुति करने वाले मुझमें भी परम तत्त्व का ज्ञान भरें ॥ १३ ॥

पहने कुण्डल मुकुट हार हैं सुर हैं सुरगण पालक हैं।
जिनसे निश दिन पूजित अर्चित जिनपद भवदधि तारक हैं।
विश्व विभासक-दीपक हैं जिन विमल वंश के दर्पण हैं
तीर्थंकर हो शान्ति विधायक यही भावना अर्पण है ॥ १४ ॥

भक्तों को भक्तों के पालन-हारों को औ यक्षों को
यतियों मुनियों मुनीश्वरों को तपोधनों के दक्षों को।
विदेश-देशों उपदेशों को पुरों गोपुरों नगरों को
प्रदान कर दें शान्ति जिनेश्वर विनाश कर दें विघ्नों को ॥ १५ ॥

क्षेम प्रजा का सदा बली हो धार्मिक हो भूपाल फले
समय-समय पर इन्द्र बरस ले व्याधि मिटे भूचाल टले।
अकाल दुर्दिन चोरी आदिक कभी रोग ना हो जग में
धर्मचक्र जिनका हम सबको सुखद रहे सुर शिव मग में ॥ १६ ॥

ध्यान शुक्ल के शुद्ध अनल से घातिकर्म को ध्वस्त किया
पूर्णबोध-रवि उदित हुआ सो भविजन को आश्वस्त किया।
वृषभदेव से वर्धमान तक चार-बीस तीर्थंकर हैं
परम शान्ति की वर्षा जग में यहाँ करें क्षेमंकर हैं ॥ १७ ॥

दोहा : पूर्ण शान्ति वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग
आलोचन उसका करुं ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥ १८ ॥

पंच महा कल्याणक जिनके जीवन में हैं घटित हुये
समवसरण में महा दिव्य वसु प्रातिहार्य से सहित हुये।

नारायण से रामचन्द्र से छहखण्डों के अधिपति से
यति अनगारों ऋषि मुनियों से पूजित है जो गणपति से ॥ १९ ॥

वृषभदेव से महावीर तक, महापुरुष मंगलकारी,
लाखों स्तुतियों के भाजन है, तीस-चार अतिशयधारी।
भक्ति भाव से चाव शक्ति से, निर्मल कर-कर निज-मन को,
वन्दूं पूँजू अर्चन कर लूँ, नमन करुँ मैं जिनगण कों ॥ २० ॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर मरण हो जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति-ओ ॥ २१ ॥

***

यन्मया दृश्यते रुपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रुपं ततः केन ब्रवीम्यहम् ॥

आ. विद्यासागर जी महाराज पद्यानुवाद

जो भी मुझे नयन गोचर हो रहा है,
ना जानता वह कभी जड़ तो रहा है।
जो जानता वह न इन्द्रिय गम्य आत्मा,
बोले तदा किस लिये किस संग आत्मा ॥

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्वरुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थो हं भवाम्यतः ॥

काया अचेतन-निकेतन दृश्यमान,
दुर्गन्ध-धाम पर है क्षण नष्यमान।
तो रोष तोष किसमें मम हो महात्मा,
मध्यस्थ हूँ इसलिए जब चेतनात्मा ॥

❖❖❖

नन्दीश्वर-भक्ति

(ज्ञानोदय छन्दः)

जय जय जय जयवन्त जिनालय नाश रहित हैं शाश्वत हैं,
जिन-में जिनमहिमा से मण्डित जैनबिम्ब हैं भास्वत हैं।
सुरपति के मुकुटों की मणियां झिल-मिल झिल-मिल करती हैं,
जिनबिम्बों के चरण-कमल को धोती हैं, मनहरती है ॥ १ ॥

सदा सदा से सहज रुप से शुचितम प्राकृत छवि वाले
रहें जिनालय धरती पर ये श्रमणों की संस्कृति धारे।
तीनों संध्याओं में इनको तन से मन से वचनों से
नमन करुं धोऊं अघ-रज को छूटूं भव वन भ्रमणों से ॥ २ ॥

भवनवासियों के भवनों में तथा जिनालय बने हुये
तेज कान्ति से दमक रहे हैं और तेज सब हने हुये।
जिन की संख्या जिन आगम में, सात कोटि की मानी है
साठ-लाख दस लाख और दो लाख बताते ज्ञानी है॥ ३ ॥

अगणित द्वीपों में अगणित हैं अगणित गुण गण मण्डित है
व्यन्तर देवों से नियमित जो पूजित संस्तुत वन्दित हैं।
त्रिभुवन के सब भविक जनों के नयन मनोहर सुन प्यारे
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर मन्दिर हैं शिवपुर द्वारे ॥ ४ ॥

सुर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिक तारक दल गगनांगन में
कौन गिने वह अनगिन हैं, ये अनगिन जिनगृह हैं जिनमें ।
जिन के वन्दन प्रतिदिन करते शिव सुख के वे अभिलाषी
दिव्य देह ले देव-देवियां ज्योतिर्मण्डल अधिवासी ॥ ५॥

*नभ-नभ स्वर रस केशव सेना मद हो सोलह कल्पों में
आगे पीछे तीन बीच दो शुभतर कल्पातीतों में ।
इस विध शाश्वत ऊर्ध्वलोक में सुखकर ये जिनधाम रहे
अहो भाग्य हो नित्य निरन्तर होठों पर जिन नाम रहे ॥ ६ ॥

अलोक का फैलाव कहां तक लोक कहां तक फैला है ?
जाने जो जिन हैं जय-भाजन मिटा उन्हीं का फेरा है।
कही उन्हीं ने मनुज लोक के चैत्यालय की गिनती है
चार शतक अट्ठावन ऊपर जिन में मन रम विनती है ॥ ७ ॥

आतम मद सेना स्वर केशव अंग रंग फिर याम कहे
उर्ध्वमध्य औ अधोलोक में यूं सब मिल जिन-धाम रहे ॥ ८ ॥

किसी ईश से निर्मित ना हैं शाश्वत हैं स्वयमेव सदा
दिव्य भव्य जिन मन्दिर देखो छोड़ो मन अहमेव मुधा।
जिनमें आर्हत प्रतिभा-मण्डित प्रतिमा न्यारी प्यारी हैं
सुरासुरों से सुरपतियों से पूजी जाती सारी हैं ॥ ९ ॥

रुचक कुण्डलों कुलाचलों पर क्रमशः चउ चऊतीस रहें
वक्षारों गिरि विजयार्द्धों पर शत शत सत्तर ईश कहें ।
गिरि इषुकारों उत्तरगिरियों कुरुओं में चउ चउ-दश हैं
तीन शतक छह बीस जिनालय गाते इनके हम यश हैं ॥ १० ॥

द्वीप रहा जो अष्टम जिसने नन्दीश्वर वर नाम धरा
नन्दीश्वर सागर से पूरण आप घिरा अभिराम खरा ।
शशि-सम शीतल जिसके अतिशय यश से बस ! दश दिशा खिली
भूमंडल भी हुआ प्रभावित इस ऋषि को भी दिशा मिली
किस किस को ना दिशा मिली ? ॥ ११ ॥

* ७ करोड़ ७२ लाख अधोलोक के चैत्यालय हैं।

इसी द्वीप में चउ दिशियों में चउ गुरु अंजन गिरिवर हैं
इक-इक अंजनगिरि संबंधित चउ चउ दधिमुख गिरिवर हैं।
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर गिरि चर्चित हैं
पावन बावन गिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं॥ १२ ॥

एक वर्ष में तीन बार शुभ अष्टाह्निक उत्सव आते
एक प्रथम आषाढ़ मास में कार्तिक फाल्गुन फिर आते।
इन मासों के शुक्ल पक्ष में अष्ट दिवसअष्टम तिथी से
प्रमुख बना सौधर्म इन्द्र को भूपर उतरे सुर गति से ॥ १३ ॥

पूज्य द्वीप नन्दीश्वर जाकर प्रथम जिनालय वन्दन ले
प्रचुर पुष्प मणिदीप धूप ले दिव्याक्षत ले चन्दन ले।
अनुपम अद्भुत जिन प्रतिमा की जग कल्याणी गुरुपूजा
भक्ति भाव से करते हे मन ! पूजा में खोजा तू जा ॥ १४ ॥

बिम्बों के अभिषेक कार्यरत हुआ इन्द्र सौधर्म महा
'दृश्य बना' उसका क्या वर्णन भाव भक्ति सो धर्म रहा।
सहयोगी बन उसी कार्य में शेष इन्द्र जयगान करें
पूर्ण चन्द्र-सम निर्मल यश ले प्रसाद गुण का पान करें॥ १५ ॥

इन्द्रों की इन्द्राणी मंगल कलशादिक लेकर सर पै
समुचित शोभा और बढ़ाती गुणवन्ती इस अवसर पै।
छम-छुम नाच नाचतीं सुर-नाटियां हैं सस्मित हो
सुनो ! शेष अनिमेष सुरासुर दृश्य देखते विस्मित हो ॥ १६ ॥

वैभवशाली सुरपतियों के भावों का परिणाम रहा
पूजन का यह सुखद महोत्सव दृश्य बना अभिराम रहा।

इसके वर्णन करने में जब, सुनो ! वृहस्पति विफल रहा
मानव में फिर शक्ति कहां वह ? वर्णन करने मचल रहा ॥ १७ ॥

जिन पूजन अभिषेक पूर्णकर अक्षत केसर चन्दन से
बाहर आये देव दिख रहे रंगे-रंगे से तन-मन से।
तथा दे रहे प्रदक्षिणा हैं नन्दीश्वर जिनभवनों की।
पूज्य पर्व को पूर्ण मनाते स्तुति करते जिन-श्रमणों की ॥ १८ ॥

सुनो ! वहां से मनुज-लोक में सब मिलकर सुर आते हैं
जहां पांच शुभ मन्दरगिरि हैं शाश्वत चिर से भाते हैं।
भद्रशाल नन्दन सुमनस औ पाण्डुक वन ये चार जहां
प्रतिमन्दर पर रहे तथा प्रतिवन में जिनगृह चार महा ॥ १९ ॥

मन्दर पर भी प्रदक्षिणा दे करें जिनालय वन्दन हैं
जिन पूजन अभिषेक तथा कर करें शुभाशय नन्दन हैं।
सुखद पुण्य का वेतन लेकर जो इस उत्सव का फल है
जाते निज-निज स्वर्गों को सुर, यहां धर्म ही सम्बल है ॥ २० ॥

तरह-तरह के तोरण-द्वारे, दिव्य वेदिका और रहें
मानस्तम्भों यागवृक्ष औ उपवन चारों ओर रहें।
तीन-तीन प्राकार बने हैं विशाल मंडप ताने हैं
ध्वजा पंक्ति का दशक लसे चउ-गोपुर गाते गाने है ॥ २१ ॥

देख सकें अभिषेक बैठकर धाम बने नाटक गृह हैं
जहां सदन संगीत साध के क्रीड़ागृह कौतुकगृह हैं।
सहज बनीं इस कृतियों को लख शिल्पी होते अविकल्पी
समझदार भी नहीं समझते सूझ-बूझ सब हो चुप्पी ॥ २२ ॥

थाली-सी है गोल वापिका पुष्कर हैं चउ-कोन रहे
भरे लबालब जल से इतने कितने गहरे कौन कहे ?
पूर्ण खिले हैं महक रहे हैं जिन में बहुविध कमल लसे
शरद काल में जिस विध नभ में शशि ग्रह तारक विपुल लसें ॥ २३ ॥

झारी लोटे घट कलशादिक उपकरणों की कमी नहीं
प्रति जिनगृह में शत-वसु शत-वसु शाश्वत मिटते कभी नहीं।
वर्णाकृति भी निरी-निरी है जिन की छवि प्रति छवी भाती
जहां घंटियां झन-झन-झन-झन बजती रहती ध्वनि आती ॥ २४ ॥

स्वर्णमयी ये जिन मन्दिर यूं युगों-युगों से शोभित हैं
गन्धकुटी में सिंहासन भी सुन्दर-सुन्दर द्योतित है।
नाना दुर्लभ वैभव से ये परिपूरित हैं रचित हुये
सुनो ! यहीं त्रिभुवन के वैभव जिनपद में आ प्रणत हुये ॥ २५ ॥

इन जिनभवनों में जिनप्रतिमा ये हैं पद्मासन वाली
धनुष पंचशत प्रमाणवाली प्रति-प्रतिमा शुभ छवि वाली ।
कोटि कोटि दिनकर आभा तक मन्द-मन्द पड़ जाती हैं
कनक रजत मणि निर्मित सारी झग-झग-झग-झग भाती है॥ २६ ॥

दिशा-दिशा में अतिशय शोभा महातेज यश धार रहें
पाप मात्र के भंजक हैं ये भवसागर के पार रहें।
और और फिर भानुतुल्य इन जिनभवनों को नमन करुँ
स्वरुप इनका कहा न जाता मात्र मौन हो नमन करुं ॥ २७ ॥

धर्मक्षेत्र ये एक शतक औ सत्तर हैं षट् कर्म जहां
धर्मचक्रधर तीर्थंकरों से दर्शित है जिनधर्म यहां ।

हुये, हो रहे, होंगे उन सब तीर्थंकरों को नमन करुं
भाव यही है 'ज्ञानोदय' में रमण करुं भव-भ्रमण हरुं ॥ २८ ॥

इस अवसर्पिणी में इस भूपर वृषभनाथ अवतार लिया
भर्ता बन युग का पालन-कर धर्म-तीर्थ का भार लिया ।
अन्त-अन्त में ''अष्टापद'' पर तप का उपसंहार किया
पापमुक्त हो मुक्ति सम्पदा प्राप्त किया उपहार जिया ॥ २९ ॥

बारहवें जिन वासुपूज्य हैं परम पुण्य के पुञ्ज हुये
पांचो कल्याणों में जिनको सुरपति पूजक पूज गये ।
'चम्पापुर' में पूर्ण रुप से कर्मों पर बहु मार किये
परमोत्तम पद प्राप्त किये औ विपदाओं के पार गये ॥ ३० ॥

प्रमुदित मति के राम-श्याम से नेमिनाथ जिन पूजित हैं
कषाय-रिपु को जीत लिये हैं प्रशमभाव से पूरित हैं।
''ऊर्जयन्त गिरनार'' शिखर पर जाकर योगातीत हुये
त्रिभुवन के फिर चूड़ामणि हो मुक्तिवधू के प्रीत हुये ॥ ३१ ॥

वीर दिगम्बर श्रमण गुणों-को पाल बने पूरण ज्ञानी
मेघनाद-सम दिव्य नाद से जगा दिया जग सद्ध्यानी ।
'पावापुर' वर सरोवरों के मध्य तपों में लीन हुये
विधि गुण विगलित कर अगणित गुण शिवपद पा स्वाधीन हुये ॥ ३२ ॥

जिसके चारों ओर वनों में मद वाले गज बहु रहते
'सम्मेदाचल' पूज्य वही है पूजो इसको गुरु कहते ।
शेष रहें जिन बीस तीर्थंकर इसी अचल पर अचल हुये
अतिशय यश को शाश्वत सुख को पाने में सफल हुये ॥ ३३ ॥

मूक तथा उपसर्ग अन्तकृत अनेक विध केवलज्ञानी
हुये विगत में यति मुनि गुणधर कु-सुमत ज्ञानी विज्ञानी ।
गिरि वन तरुओं गुफा कंदरों सरिता सागर तीरों में
तप साधन कर मोक्ष पधारे अनल शिखा मरु टीलों में ॥ ३४ ॥

मोक्ष साध्य के हेतुभूत ये स्थान रहें पावन सारे
सुरपतियों से पूजित हैं सो इन की रज शिर पर धारें ।
तपोभूमि ये पुण्य क्षेत्र ये तीर्थ क्षेत्र ये अघहारी
धर्मकार्य में लगे हुये हम सबके हों मंगलकारी ॥ ३५ ॥

दोष रहित हैं विजितमना हैं जग में जितने जिनवर हैं
जितनी जिनवर की प्रतिमायें तथा जिनालय मनहर हैं।
समाधि साधित भूमि जहां मुनि-साधक के हो चरण परें
हेतु बने ये भविकजनों के भवलय में हम चरण पड़ें ॥ ३६ ॥

उत्तम यशधर जिनपतियों का स्तोत्र पढ़े निजभावों में
तन से मन से और वचन से तीनों संध्या कालोंमें ।
श्रुतसागर के पार गये उन मुनियों से जो संस्तुत हैं
यथाशीघ्र वह अमित पूर्ण पद पाता सम्मुख प्रस्तुत हैं ॥ ३७ ॥

मलमूत्रों का कभी न होना रुधिर क्षीर-सम श्वेत रहे
सर्वांगों में सामुद्रिकता सदा सदा ना स्वेद रहे ।
रुप सलोना सुरभित होना तन-मन में शुभ लक्षणता
हित मित मिश्री मिश्रितवाणी सुन लो ! और विलक्षणता ॥ ३८ ॥

अतुल-वीर्य का सम्बल होना प्राप्त आद्य संहनन पना
ज्ञात तुम्हे हो ख्याल रहे हैं स्वतिशय दश ये गुणनपना ।

जन्म-काल से मरण-काल तक ये दश अतिशय सुनते हैं
तीर्थंकरों के तन में मिलते अमितगुणों को गुनते हैं॥ ३९ ॥

कोश चार शत सुभिक्षिता हो अधर गगन में गमन सही
चउ विध कवलाहार नहीं हो किसी जीव का हनन नहीं ।
केवलता या श्रुतकारकता उपसर्गों का नाम नहीं
चतुर्मुखी का होना तन की छाया का भी काम नहीं ॥ ४० ॥

बिना बढ़े वह सुचारुता से नख केशों का रह जाना
दोनों नयनों के पलकों का स्पन्दन ही चिर मिट जाना ।
घातिकर्म के क्षय के कारण अर्हन्तों में होते हैं
ये दश अतिशय इन्हें देख बुध पल भर सुध-बुध खोते हैं ॥ ४१ ॥

अर्धमागधी भाषा सुख की सहज समझ में आती है
समवसरण में सब जीवों में मैत्री घुल-मिल जाती है।
एक साथ सब ऋतुयें फलती 'क्रम' के सब पथ रुक जाते
लघुतर गुरुतर बहुतर तरुवर फूल फलों से झुक जाते ॥ ४२ ॥

दर्पण-सम शुचि रत्नमयी हो झग-झग करती धरती है
सुरपति नरपति यतिपतियों के जन-जन के मन हरती है।
जिनवर का जब विहार होता पवन सदा अनुकूल बहे
जन-जन परमानन्द गन्ध में डूबे दुख सुख भूल रहे ॥ ४३ ॥

संकटदा विषकंटक कीटो कंकर तिनकों शूलों से
रहित बनाता पथ को गुरुतर उपलों से अतिधूलों से ।
योजन तक भूतल को समतल करता बहता वह साता
मन्द-मन्द मकरन्द गन्ध से पवन मही को महकाता ॥ ४४ ॥

तुरत इन्द्र की आज्ञा से बस नभ मण्डल में छा जाते
सघन मेष के कुमार गर्जन करते बिजली चमकाते ।
रिम-झिम रिम-झिम गन्धोदक की वर्षा होती हर्षाती
जिस सौरभ से सब की नासा सुर-सुर करती दर्शाती ॥ ४५ ॥

आगे पीछे सात-सात इक पदतल में तीर्थंकर के
पंक्तिबद्ध यों अष्टदिशाओं और उन्हीं के अन्तर में ।
पद्म बिछाते सुर माणिक-सम केशर से जो भरे हुये
अतुल परस है सुखकर जिनका स्वर्ण दलों से खिले हुये ॥ ४६ ॥

पकी फसल ले शाली आदिक धरती पर सर धरती है
सुन लो फलतः रोम-रोम से रोमाञ्चित सी धरती है।
ऐसी लगती त्रिभुवनपति के वैभव को ही निरख रही
और स्वयं को भाग्यशालिनी कहती-कहती हरख रही ॥ ४७ ॥

शरदकाल में विमल सलिल से सरवर जिस विध लसता है
बादल-दल से रहित हुआ नभ-मण्डल उस विध हंसता ।
दशों दिशायें धूम्र-धूलियां शामभाव को तजती हैं
सहज रुप से निरावरणता उज्वलता को भजती है ॥ ४८ ॥

इन्द्राज्ञा में चलने वाले देव चतुर्विध वे सारे
भाविक जनों को सदा बुलाते समवशरण में उजियारे ।
उच्चस्वरों में दे दे करके आमन्त्रण की ध्वनि 'ओ जी' !
देवों के भी देव यहां हैं शीघ्र पधारों आ-ओ जी ! ॥ ४९ ॥

जिसने धारे हजार आरे स्फुरणशील मन हरता है
उज्वल मौलिक मणि-किरणों से झर-झुर झर-झुर करता है।

जिसके आगे तेज भानु भी अपनी आभा खोता है
आगे आगे सबसे आगे धर्मचक्र वह होता है ॥ ५० ॥

वैभवशाली होकर भी ये इन्द्र लोग सब सीधे हैं
धर्म राग से रंगे हुये हैं भाव भक्ति में भीगे हैं।
इन्हीं जनों से इस विध अनुपम अतिशय चौदह किये गये
वसुविध मंगल पात्रादिक भी समवशरण में लिये गये ॥ ५१ ॥

नील-नील वैडूर्य दीप्ति से जिसकी शाखायें भाती
लाल-लाल मृदु प्रवाल आभा जिनमें शोभा औ लाती ।
मरकत मणि के पत्र बने हैं जिसकी छाया शाम घनी
अशोक तरु यह अहो शोभता यहां शोक की शाम नहीं ॥ ५२ ॥

पुष्प वृष्टि हो नभ में जिसमें पुष्प अलौकिक विपुल मिले
नील-कमल हैं लाल-धवल हैं कुन्द बहुल हैं बकुल खुले ।
गन्धदार मन्दार मालती पारिजात मकरन्द झरे
जिन-परअलिगण 'गुन-गुन' गाते निशिगन्धा अरविन्द खिले ॥ ५३ ॥

जिनकी कटि में कनक करधनी कलाइयों में कनक कड़े
हीरकके केयूर हार हैं पुष्ट कण्ठ में दमक पड़े ।
सालंकृत दो यक्ष खड़े जिन-कर्णों में कुण्डल डोले
चमर ढुराते हौले-हौले प्रभु की जो जय-जय बोले ॥ ५४ ॥

यहां यकायक घटित हुआ जो कोई सकता बता नहीं
दिवस रात का भला भेद वह कहां गया कुछ पता नहीं ।
दूर हुये व्यवधान हजारों रवियों के वह आप कहीं
भामण्डल की यह सब महिमा आँखों को कुछ ताप नहीं ॥ ५५ ॥

प्रबल पवन का घात हुआ जो विचलित होकर तुरत मथा
हर-हर-हर-हर सागर करता हर मन हरता मुदित यथा ।
वीणा मुरली दुम-दुम दुंदुभि ताल-ताल करताल तथा
कोटि कोटियों वाद्य बज रहे समवशरण में सार कथा ॥ ५६ ॥

महादीर्घ वैडूर्य रत्न का बना दण्ड है जिस पर हैं
तीन चन्द्र-सम तीन छत्र ये गुरु-लघु लघुतम ऊपर हैं।
तीन भुवन के स्वामीपन की स्थिति जिससे अति प्रकट रही
सुन्दरतम हैं मुक्ताफल की लडियां जिस पर लटक रहीं ॥ ५७ ॥

जिनवर की गम्भीर भारती श्रोताओं के दिल हरती
योजन तक जो सुनी जा रही अनुगुंजित हो नभ धरती ।
जैसे जल से भरे मेघदल नभ-मण्डल में डोल रहे
ध्वनि में डूबे दिगन्तरों में घुमड़-धुमड़ कर बोल रहे ॥ ५८ ॥

रंग-बिरंगी मणि-किरणों से इन्द्र धनुष की सुषमा ले
शोभित होता अनुपम जिस पर ईश विराजे गरिमा ले ।
सिंहो में वर बहु सिंहो ने निज पीठ पर लिया जिसे
स्फटिक शिला का बना हुआ है सिंहासन है जिया ! लसे ॥ ५९ ॥

अतिशय गुण चउतीस रहें ये जिस जीवन में प्राप्त हुये
प्रातिहार्य का वसुविध वैभव जिन्हें प्राप्त हैं आप्त हुये ।
त्रिभुवन के वे परमेश्वर हैं महागुणी भगवन्त रहे
नमूं उन्हें अरहन्त सन्त हैं सदा-सदा जयवन्त रहें ॥ ६० ॥

दोहा : नन्दीश्वर वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग ।
आलोचन उसका करुं ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥ ६१ ॥

नन्दीश्वर के चउ दिशियों में चउ गुरु अंजन गिरिवर हैं
इक-इक अंजनगिरि सम्बन्धित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं।
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर गिरि चर्चित हैं
पावन बावन-गिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं ॥ ६२ ॥

देव चतुर्विध कुटुम्ब ले सब इसी द्वीप में हैं आते
कार्तिक फागुन आषाढ़ों के अन्तिम वसु-दिन जब आते ।
शाश्वत जिनगृह जिनबिम्बों से मोहित होते बस तातैं
तीनों अष्टाह्निक पर्वों में यहीं आठ-दिन बस जाते ॥ ६३ ॥

दिव्य गन्ध ले- दिव्य दीप ले, दिव्य-दिव्य ले सुमन तथा
दिव्य चूर्ण ले- दिव्य न्हवन ले, दिव्य दिव्य ले वसन तथा ।
अर्चन, पूजन, वन्दन करते, नियमित करते नमन सभी
नन्दीश्वर का पर्व मनाकर करते निजघर गमन सभी ॥ ६४ ॥

मैं भी उन सब जिनालयों का भरतखण्ड में रहकर भी
अर्चन पूजन वन्दन करता प्रणाम करता झुककर ही ।
कष्ट दूर हो कर्मचूर हो बोधिलाभ हो सद्गति हो
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ! ॥ ६५ ॥

समय व स्थान परिचय

गगन चूंमता शिखर है भव्य जिनालय भ्रात ।
विघन-हरण मंगलकरण महुवा में विख्यात ॥ १ ॥
बहती कहती है नदी 'पूर्णा' जिसके तीर ।
पार्श्वनाथ के-दर्श में दिखता भव का तीर ॥ २ ॥
गन्ध गन्ध गति गन्ध की सुगन्ध दशमी योग ।
अनुवादित ये भक्तियां पढ़ो मिटे सब रोग ॥ ३ ॥

❖❖❖

* खण्ड ३ *

दर्शन-पाठ (हिन्दी)

(पं. श्री बुधचन्द्रजी)

प्रभु पतित पावन में अपावन चरन आयो शरण जी ।
यों विरद आप निहार स्वामी मेट जामन मरण जी ॥ १ ॥

अर्थ - हे प्रभो ! आप पतित पावन हैं- पतित को पवित्र करने वाले हैं और मैं अपावन अपवित्र तथा गिरा हुआ हूँ, अतः आपके चरणों में आया हे स्वामिन् आपके स्वरुप को देखकर हे पावन पवित्र आप मेरे जन्म-मरण को मेटिये, अर्थात् मुझे जन्म-मरण रुप संसार से निकालकर मोक्ष प्राप्त कराये ।

तुम ना पिछान्यो आन मान्यो देव विविध प्रकार-जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥२॥

अर्थ - मैंने आपको नहीं पहिचाना इसलिए नानाप्रकार के अन्य रागी द्वेषी देवों को देव मानता रहा। मैंने अपनी इस बुद्धि से, ज्ञान से निज को नहीं जाना, सदा भ्रम को प्राप्त होता रहा। उसी को मैं हितकारी मानता रहा।

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो ।
तब इष्ट मूल्यों भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥ ३ ॥

अर्थ - इस संसार रुपी महान् जंगल में, अटवी में कर्मरुपी बैरी ने मेरा ज्ञान रुपी धन लूट लिया है। इस लिए इष्ट को भूलकर भ्रष्ट होता हुआ अनिष्ट गति को प्राप्त कर संसार में भटक रहा हूँ।

धन घड़ी यों धन दिवस यों ही, धन्य जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो ॥४॥

अर्थ - आज की यह घड़ी धन्य है, आज का यह दिवस भी धन्य है, मेरा

मनुष्य जन्म भी आज धन्य हो गया । मेरा परम सौभाग्य ही फला है कि जिससे दर्शन कर आपको देख लिया है, आपको जान लिया है।

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरै ।
वसु प्रतिहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छवि को हरै ॥५॥

अर्थ - आपकी छवि वीतरागी है, नग्न मुद्रा है, दृष्टि नासा पर स्थित है आप, आठ प्रतिहार्यों तथा अनन्तगुणों से युक्त आपकी छवि इतनी तेजवान है कि वह करोड़ो सूर्य की छवि को हरण कर रही है।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणी लयो ॥ ६ ॥

अर्थ - मेरा मिथ्यात्व रुपी अन्धकार नष्ट हो गया है और आत्मा-रुपी सूर्य का उदय हो गया है। मेरे हृदय में ऐसा हर्ष हुआ मानो किसी रंक (भिखारी) को चिंतामणि रत्न की प्राप्ति हो गई होवें ।

दोऊ हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक पति जिन, सुनहूँ तारण तरण जी ॥ ७ ॥

अर्थ - मैं दोनों हाथ, जोड़ अञ्जलि बनाकर मस्तक नवाकर आपके चरणो में विनती करता हूँ । हे तारण तरण; सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकी नाथ जिनेन्द्र देव ! आप मेरी उस विनती को सुनिये ।

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नर राज परिजन साथ जी ।
'बुध' जाँच-हूँ तुम भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथ जी ॥८॥

अर्थ - ओ स्वामिन् ! मैं स्वर्ग के आवास चक्रवर्ती का पद और परिजन कुटुम्ब परिवार की याचना नहीं करता । मैं 'बुधजन' तो यही याचना करता हूँ कि हे मुक्ति के स्वामी ! मुझे भव भव में आपकी भक्ति प्राप्त होती रहे।

❖❖❖

बारह भावना (भूधरदासजी)

आनित्य-भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ १ ॥

अशरण-भावना

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ ना राखन हार ॥ २ ॥

संसार-भावना

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥ ३ ॥

एकत्व-भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूँ इस जीव को, साथी सगा ना कोय ॥ ४ ॥

अन्यत्व-भावना

जहां देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ ५ ॥

अशुचि भावना

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥ ६ ॥

आसव्र-भावना

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहूँ ओर, सरबस लूटें सुध नहीं ॥ ७ ॥

संवर-भावना

सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं।
तब कछु बने उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं ॥ ८ ॥

निर्जरा-भावना

ज्ञान दीप तप तेलभर, घर शौधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर ॥ ९ ॥

निर्जरा-भावना

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥ १० ॥

लोक-भावना

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥ ११ ॥

बोधि-दुर्लभभावना

धन-कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ हैं संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥ १२ ॥

धर्म-भावना

जांचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥ १३ ॥

❖❖❖

भोगों से सुख परिणामों में दुःख
त्याग से प्रारंभ में दुख, परिणामों में सुख है।

मेरी भावना

(पं. जुगलकिशोर जी युगवीर)

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो ॥ १ ॥

विषयों की आशा नहीं जिनके साम्य भाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन में जो निश दिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना-खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥ २ ॥

रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे ।
उन्ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करुँ ।
परधन, बनिता पर न लुभाऊं संतोषामृत पिया करुँ ॥ ३ ॥

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करुँ ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरुँ ।
रहें भावना ऐसी मेरी सरल, सत्य व्यवहार करुँ ।
बने जहां तक इस जीवन मैं, औरों का उपकार करुं ॥ ४ ॥

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहें ।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ।
दुर्जन, क्रूर, कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्य भाव रक्खूं में उन-पर ऐसी परिणति हो जावे ॥ ५ ॥

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बनें जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ।

होऊं नहीं कृतघ्न[1] कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥ ६ ॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावें ।
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देनें आवे ।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे ॥ ७ ॥

होकर सुख में मग्न न फूलै, दुख में कभी न घबरावै ।
पर्वत नदी, श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावै ।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावै ॥ ८ ॥
सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावै ।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावै ।
घर, घर, चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत[2] दुष्कर[3] हो जावै ।
ज्ञान चरित उन्नति कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावै ॥ ९ ॥

ईति-भीति व्यापै नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करें ।
धर्म-निष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करें ।
रोग-मरी[4]-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करें ।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करें ॥ १० ॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करें ।
अप्रिय कटुक, कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करें ।
बनकर सब "युगवीर" हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें ।
'वस्तु स्वरुप विचार' खुशी से, सब दुख-संकट सहा करें ॥ ११ ॥

❖❖❖

१. किये उपकार नहीं भूलना, २. खोटे कार्य, ३. दूर हो जाये, ४. महान रोग

समाधि मरण (भावना)

इतना तो कर दो स्वामी, जब प्राण तन से निकले।
होवे समाधि पूरी जब प्राण तन से निकले॥ टेक॥

माता-पितादि जितने, हैं ये कुटुम्ब सारे[२]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥

बैरी बहुत से मेरे, होवेंगे इस जगत में[२]
उनसे क्षमा करा लूँ, जब प्राण तन से निकले॥ २॥

परिग्रह का जाल मुझपर, फैला बहुत है स्वामी[२]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥

दुष्कर्म दुःख दिखावे या रोग मुझको घेरे[२]
प्रभु का न ध्यान छूटे, जब प्राण तन से निकले॥

इच्छा क्षुधा तृषा की, होवे जो उस घड़ी में[२]
उसका भी त्याग कर दूँ, जब प्राण तन से निकले॥

हे नाथ अर्ज करता, विनती पे ध्यान दीजे[२]
होवे सफल मनोरथ, जब प्राण तन से निकले॥

❖❖❖

समाधि भावना (शिवराम)

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊं।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊं॥ टेक॥

शत्रु अगर कोई हों संतुष्ट उनको कर दूं।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊं॥

त्यागूं आहार पानी औषध विचार अवसर
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊं॥

जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊं॥

आतम स्वरुप अथवा आराधना विचारुं।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊं॥

धर्मात्मा निकट हों चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊं॥

जीने की हो न वाञ्छा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊं॥

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूं॥

रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥

❖❖❖

सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥ १ ॥

वह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥ २ ॥

सुख दुख, बैरी बन्धु वर्ग में, कांच-कनक में समता हो।
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में नहीं खेद नहिं ममता हो ॥ ३ ॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥ ४ ॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो ॥ ५ ॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥ ६ ॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपांत।
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥ ७ ॥

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥ ८ ॥

कभी वासना की सरिता का गहन-सलिल मुझ पर छाया।
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥ ९ ॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ॥ १० ॥

निरभिमान उज्जवल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहें ॥ ११ ॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥ १२ ॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥ १३ ॥

जो भव दुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसें हृदय में देव महान ॥ १४ ॥

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥ १५ ॥

निखिल-विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वरुपी, परम देव मम हृदय रहे ॥ १६ ॥

देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥ १७ ॥

कर्म-कलंक अछूत न जिसको, कभी छूँ सके दिव्य प्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥ १८ ॥

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥ १९ ॥

जिसके ज्ञान रुप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त ॥ २० ॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद चिन्ता नहिं जिनको, परम शरण मुझको वह देव ॥ २१ ॥

तृण, चौकी शिल शैल शिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर , पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥ २२ ॥

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम ।।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम ।। २३ ।।

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं ।
यह निश्चय कर छोड़, बाह्य को मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ।। २४ ।।

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ।। २५ ।।

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है ।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ।। २६ ।।

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो-सुत-तिय-मित्रों से कैसे ।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ।। २७ ।।

महा कष्ट पाता जो करता, पर-पदार्थ जड़-देह संयोग ।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ।। २८ ।।

जो संसार-पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़ ।
निर्विकल्प-निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर, फिर लीन उसी में हो ।। २९ ।।

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते ।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ।। ३० ।।

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई ना फल देता कुछ भी ।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि ।। ३१ ।।

निर्मल, सत्य शिवं, सुन्दर है, 'अमित गति' वह देव महान ।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ।। ३२ ।।

इन बत्तीस पदों से जो कोई भी परमातम को ध्याता हैं ।
साँची सामायिक को पाकर भवदधि से तिर जाता है ।

।। इति सामायिक पाठ ।।

❖❖❖

गुरु पूजन

स्व. रमेश जैन 'अरुण' व्याख्याता - विरचित

श्री विद्यासागर के चरणों में, मैं झुका रहा अपना माथा ।
जिनके जीवन की हर चर्या बन पड़ी स्वयं ही नवगाथा ।।
जैनागम का वह सुधा कलश जो बिखराते हैं गली-गली ।
जिनके दर्शन को पाकर के खिलती मुरझाई हृदय कली ।।

ॐ हूँ श्री आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्र !
अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्
ॐ हूँ आचार्य विद्यासागर मुनीद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठ स्थापनम्
ॐ हूँ आचार्य विद्यासागर मुनीद्र !
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधी-करणम्

सांसारिक विषयों में पड़कर, मैंने अपने को भरमाया ।
इस रागद्वेष की वैतरणी से, अब तक पार नहीं पाया ।।
तव विद्या सिन्धु के जल कण से, भव कालुष धोने आया हूँ ।
आना जाना मिट जाये मेरा, यह बन्ध काटने आया हूँ ।।

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलंम् निर्वपामिति स्वाहा ।

क्रोध अनल में जल-जल कर, अपना सर्वस्व लुटाया है ।
निज शान्त स्वरुप न जान सका, जीवन भर इसे भुलाया है ।।
चन्दन सम शीतलता पाने अब, शरण तुम्हारी आया हूँ ।
संसार ताप मिट जाये मेरा, चन्दन वन्दन को लाया हूँ ।।

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामिति स्वाहा ।

जड़ को न मैंने जड़ समझा, नहिं अक्षय निधि को पहचाना ।
अपने तो केवल सपने थे, भ्रम और जगत का भटकाना ।।

चरणों में अर्पित अक्षत है, अक्षय पद मुझको मिल जाये ।
तव ज्ञान अरुण की किरणों से, यह हृदय कमल भी खिल जावे ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामिति स्वाहा ।

इस विषय भोग की मदिरा पी, मैं बना सदा से मतवाला ।
तृष्णा को तृप्त करें जितनी, उतनी बढ़ती इच्छा ज्वाला ॥
मैं कामभाव विध्वंस करुँ, मन सुमन चढ़ाने आया हूँ ।
यह मदन विजेता बन न सके, यह भाव हृदय में लाया हूँ ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा ।

इस क्षुधा रोग की व्यथा कथा, भव-भव में कहता आया हूँ ।
अति भक्ष-अभक्ष्य भखे फिर भी, मन तृप्त नहीं कर पाया हूँ ॥
नैवेद्य समर्पित करके मैं, तृष्णा की भूख मिटाऊँगा ।
अब और अधिक न भटक सकूँ, यह अन्तर बोध जगाऊँगा ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामिति स्वाहा ।

मोहान्धकार से व्याकुल हो, निज को नहीं मैंने पहचाना ।
मैं राग द्वेष में लिप्त रहा, इस हाथ रहा बस पछताना ॥
यह दीप समर्पित है मुनिवर, मेरा तम दूर भगा देना ।
तुम ज्ञान दीप की बाती से, मम अन्तर दीप जला देना ।

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
मोहांधकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामिति स्वाहा ।

इस अशुभ कर्म ने घेरा है, मैंने अब तक यह था माना ।
बस पाप कर्म तजपुण्यकर्म को, चाह रहा था अपनाना ॥

शुभ-अशुभ कर्म सब रिपुदल हैं, मैं इन्हें जलाने आया हूँ ।
इसलिये गुरु के चरणों में, अब धूप चढ़ाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामिति स्वाहा ।

भोगों को इतना भोगा कि, खुद को ही भोग बना डाला ।
साध्य और साधक का अन्तर, मैंने आज मिटा डाला ॥
मैं चिदानन्द में लीन रहूं, पूजा का यह फल पाना है ।
पाना था जिसके द्वारा, वह मिल बैठा मुझे ठिकाना है ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
मोक्षफल प्राप्ताय फलम् निर्वपामिति स्वाहा ।

जग के वैभव को पाकर मैं, निश दिन कैसा अलमस्त रहा ।
चारों गतियों की ठोकर को, खाने में ही अभ्यस्त रहा ॥
मैं हूँ स्वतन्त्र ज्ञाता दृष्टा, मेरा पर से क्या नाता है ।
कैसे अनर्घ पद पा जाऊँ यह 'अरुण' भावना भाता हूँ ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय
अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घम् निर्वपामिति स्वाहा ।

जयमाला

हे गुरुवर तेरे गुणगाने अर्पित हैं जीवन के क्षण-क्षण ।
अर्चन के सुमन समर्पित हैं, हरषाये जगती के कण-कण ॥
कर्नाटक के सदलगा ग्राम में, मुनिवर तुमने जन्म लिया ।
मल्लप्पा पूज्य पिता श्री को, अरु श्रीमति कृत-कृत्य किया ॥
बचपन के इस विद्याधर में, विद्या के सागर उमड़ पड़े ।
मुनिराज देशभूषण से, तुम व्रत ब्रह्मचर्य ले निकल पड़े ॥

आचार्य ज्ञानसागर ने सन् अड़सठ में मुनि पद दे डाला ॥
अजमेर नगर में हुआ उदित मानो रवि तम हरने वाला ॥
परिवार तुम्हारा सबका सब जिन पथ पर चलने वाला है ।
वह भेद ज्ञान की छैनी से गिरि कर्म काटने वाला है ॥
तुम स्वयं तीर्थ से पावन हो तुम हो अपने में समयसार ।
तुम स्याद्वाद के प्रस्तोता वाणी-वीणा के मधुर तार ॥
तुम कुन्द-कुन्द के कुन्दन से कुन्दन-सा जग को कर देने ।
तुम निकल पड़े बस इसीलिए भटके अटकों को पथ देने ॥
वह मन्द मधुर मुस्कान सदा चेहरे पर बिखरी रहती है ।
वाणी कल्याणी है अनुमप, करुणा के झरने झरती हैं ॥
तुममें कैसा सम्मोहन है या है कोई जादू टोना ।
जो दर्श तुम्हारे कर जाता नहिं चाहे कभी विलग होना ॥
इस अल्प उम्र में भी तुमने साहित्य सृजन अति कर डाला ।
जैन गीत गागर मैं तुमने मानो सागर ही भर डाला ॥
है शब्द नहीं गुण गाने को गाना भी मेरा अनजाना ।
स्वर ताल छन्द मैं क्या जानूं, केवल भक्ति में रम जाना ॥
भावों की निर्मल सरिता में अवगाहन करने आया हूँ ।
मेरा सारा दुःख दर्द हरो यह अर्घ भेंटने आया हूँ ॥
हे तपो मूर्ति ! हे आराधक ! हे योगीश्वर ! हे महासंत !
है 'अरुण' कामना देख सके युग-युग तक आगामी बसन्त ॥

ॐ ह्रीं शताष्ट आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय पूर्णार्घं निर्वपामिति स्वाहा ।

❖❖❖

आरती - आ. श्री विद्यासागरजी

विद्यासागर की, गुण आगर की शुभ मंगल दीप सजाय के ।
आज उतारुँ आरतिया.... ॥ टेक ॥

मल्लप्पा श्री श्रीमति के गर्भ विषेगुरु आये ।
ग्राम सदलगा जन्म लिया है, सब जन मंगल गाये ॥ १ ॥
गुरु जी सबजन मंगल गाये,

न रागी की न द्वेषी की, शुभ मंगल दीप सजाय के ।
आज उतारुँ आरतिया ॥ २ ॥ विद्यासागर...

गुरुवर पाँच महाव्रत धारी, आतम ब्रह्म विहारी ।
खड्गधार शिव-पथ पर चलकर, शिथिलाचार निवारी ॥
गुरुजी शिथिलाचार निवारी,

गृहत्यागी की, वैरागी की, ले दीप सुमन का थाल रे ।
आज उतारुँ आरतिया ॥ ३ ॥ विद्यासागर...

गुरुवर आज-नयन से लखकर, आलौकिक सुख-पाया ।
भक्ति-भाव से आरति करके, फूला नही समाया ।
गुरुजी फूला नहीं समाया,

ऐसे मुनिवर को, ऐसे ऋषिवर को, हो वन्दन बारम्बार हो ।
आज उतारुँ आरतिया ॥ ४ ॥ विद्यासागर...

❖❖❖

आरती

तीर्थ बिहारी गुरुराज आज थारी आरती उतारुँ
वर्षों से सूना पड़ा नाथ आज मन मंदिर पधारो ॥
आत्म पिपासु ये चातक आए
अध्यात्म अमृत पाने को आए
वर्षा दो अमृत आज
कि आज थारी आरती उतारुँ ..... ॥ १ ॥
कब से ये प्यासी हैं अखियां हमारी
वीतराग मूरत ये प्यारी न्यारी
सपना कब होगा साकार
आज थारी आरती उतारुँ ..... ॥ २ ॥
विद्या गुरु की हैं महिमा न्यारी
उनके आशीष का अतिशय भारी
दीक्षा का पाऊँ उपहार, भक्ति का पाऊँ उपहार
आज थारी आरती उतारुँ ..... ॥ ३ ॥
चरणों की रज को सिर पर लगाऊँ
जन्म मरण के कष्ट मिटाऊँ
मुक्ती का पाऊँ साम्राज्य
आज थारी आरती उतारुँ ..... ॥ ४ ॥
मूक पशु का सुनकर क्रंदन
बनकर आए वीर के नंदन
करुणा के अवतार
आज थारी आरती उतारुँ ..... ॥ ५ ॥

विद्यासागर महाराज
आज थारी आरती उतारुँ

❖❖❖

विद्या गुरु-वन्दना

श्री विद्यासागरजी गुरुवर हमारे,
संसार सिन्धु के तुम हो किनारे ॥टेक॥
तू ज्ञान सागर की पहली लहर है ।
जाना कहां है ये तुमको खबर है ।
हमको भी ले चल मुक्ति की मंजिल
जीवन की नैया है तेरे सहारे ।
श्री विद्यासागरजी .....

तुम वीतरागी हो वैराग्य दायी
श्री जैन दर्शन की महिमा बताई ।
लाखों को तारा हमने पुकारा
आवाज सुन लो ओ गुरुवर हमारे ।
श्री विद्यासागरजी .....

तुम तो अहिंसा धरम के मसीहा
तुम स्वाति की बूंद मैं हूँ पपीहा ।
हमको जिला दो हमको पिला दो
अध्यात्म अमृत वचन ये तुम्हारे
श्री विद्यासागरजी .....

सम्यक्त्व समता के आलय तुम्हीं हो
माँ भारती के हिमालय तुम्ही हो ।
पथ तुमसे पावन उपकारी जीवन
हम अश्रुजल से चरणा पखारे ।
श्री विद्यासागर जी गुरुवर हमारे
संसार सिंधु के तुम हो किनारे ।

विरचित
एलक सम्यक्त्वसागरजी

❖❖❖

संत साधु बन के विचरुँ

संत साधु बन के विचरुँ, वह घड़ी कब आयेगी ।
चल पड़ूँ में मोक्ष पथ पर, वह घड़ी कब आयेगी ॥ टेक ॥

हाथ में पिच्छी कमण्डल, ध्यान आतम राम का ।
छोड़कर घर बार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी ॥

आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से ।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ॥

पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ ।
भावना बारह जूँ भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ॥

बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिन्तन करुँ ।
निर्विकल्प होवें समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ॥

❖❖❖

* किससे क्या मिलता है *

- सत्सङ्ग से सुमित्र मिलते है ।
- मान सम्मान दुनिया से मिलता है ।
- पुराण ग्रंथो से सदुपदेश मिलता है ।
- कष्ट दुःखों से सहनशीलता मिलती है ।
- सत्मृत्यु से डरो नहीं स्वर्ग इसी से मिलता है ।

ऐसे गीत गाया करो

उठे सब के कदम तरा रम् पम् पम् ।
कभी ऐसे गीत गाया करो ।
कभी खुशी कभी गम तरा रम् पम् पम्
हँसो और हँसाया करों ।
मेरे प्यारे-प्यारे भैया, मेरे अच्छे अच्छे भैया ।
जरा मन्दिर में आया करो ।
कभी पूजा, कभी आरती, कभी आरती कभी पूजा,
कभी दोनों रचाया करों ।
मेरी प्यारी प्यारी बहना, मेरी अच्छी अच्छी बहना,
पाठशाला में जाया करों ।
कभी भाग छहढाला, छहढाला कभी भाग,
कभी दोनों पढ़ आया करों ।
मेरे प्यारे-प्यारे पापा, मेरे अच्छे-अच्छे पापा,
जरा तीर्थ कराया करो ।
कभी मांगी कभी तुंगी, कभी तुंगी कभी मांगी,
कभी दोनों कराया करों ।
मेरी प्यारी-प्यारी मम्मी, मेरी अच्छी-अच्छी मम्मी,
कभी चौका लगाया करो ।
कभी मुनि कभी आर्यिका, कभी ऐलक कभी क्षुल्लक,
कभी सब को पड़गाया करो ।
मेरी प्यारी-प्यारी नानी, मेरी अच्छी-अच्छी नानी,
रोज कहानी सुनाया करो ।
कभी सीता कभी मैंना, कभी सोमा, कभी तारा,
कभी सब की सुनाया करो ।
मेरे प्यारे-प्यारे नाना मेरे अच्छे अच्छे नाना,
कभी दान कराया करो ।
कभी औषध, कभी आहार, कभी अभय कभी ज्ञान,
कभी चारों कराया करो ।
उठे सब के कदम .....

❖❖❖

ओ मेरे जादू के थैले (गीत)

ओ मेरे जादू के थैले, अंतर मंतर जंतर-जूँ,
जल्दी से मेरे थैले मैं, लड्डु पेड़े भर दे तूँ।
फिर मैं डग-डग जाऊँगा, थोड़ा मैं भी खाऊँगा,
जो भी दुबला-भूखा होगा, उसको बाँटता जाऊँगा ॥ १ ॥

जल्दी से मेरे थैले मैं, धोती कुर्ता भर दे तू,
फिर मैं डग-डग जाऊँगा, सबको पास बुलाऊँगा
जो भी फटे पुराने पहने, उनको बाँटता जाऊँगा ॥ २ ॥ ओ..

जल्दी से मेरे थैले मैं, केले सन्तरे भर दे तूं
फिर मैं डग-डग जाऊँगा, सब पर प्यार लुभाऊँगा
जो भी रागी-दीन मिलेगा, सबको स्वस्थ बनाऊगा ॥ ३ ॥ ओ..

जल्दी से मेरे थैले मैं, खुब किताबें भर दे तू,
फिर मैं डग-डग जाऊँगा, सबको टेर लगाऊँगा,
जो-भी अनपढ़ जहाँ मिलेगा, उन-सबको पढ़वाऊँगा ॥ ४ ॥ ओ..

ओ मेरे जादू के थैले अंतर-मंतर-जंतर जू
अब मेरी यह बात मान ले सबको मुझसा कर दे तू ॥

❖❖❖

प्रार्थना

इतनी शक्ति हमें देना हे गुरुवर, मन का विश्वास कमजोर हो-ना।
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना ॥ टेक ॥

दूर अज्ञान के हों अन्धेरे, तू हमें ज्ञान की रोशनी दे।
हर बुराई से बचते रहें हम, जितनी भी दे भली जिन्दगी दे।
बैर हो न किसी का किसी से, भावना मन में बदले की हो ना ॥

हम न सोचें हमें क्या मिला है, हम ये सोचे किया क्या है अर्पण।
फुल खुशियों के बाँटे सभी को, सबका जीवन ही बन जाये मधुवन।
अपनी करुणा का जल तू बहा कर, कर दे पावन हर इक मन का कोना ॥

हम अंधेरे में हैं रोशनी दे, खो न दे खुद को ही दुश्मनी से।
हम सजा पायें अपने किये की, मौत भी हो तो सह लें खुशी से।
दर्द गुजरा है कल फिर न गुजरे, आने वाला वो कल ऐसा हो ना ॥

हर तरफ जुल्म है बेबसी है, सहमा सहमा सा हर आदमी है।
पाप का बोझ बढ़ता ही जाए, जाने कैसे ये धरती थमी है।
बोझ ममता का तू ये उठा ले, तेरी रचना का यूँ अन्त हो ना ॥

❖❖❖

प्यास तो जल मिलने पर शान्त हो जाती है।
धन की तृष्णा धन मिलने पर और ही बढ़ जाती है।

प्रार्थना-गीत

धरती की शान तू है मनु की संतान
तेरी मुट्ठियों में बन्द तूफान है रेऽऽ...
मनूष्य तू बड़ा महान है....
तू जो चाहे पर्वत पहाड़ो को फोड़ दे,
तू जो चाहे नदियों के मुख, को भी मोड़ दे,
तू जो चाहे माटी से अमृत निचोड़ दे
तू जो चाहे धरती को अम्बर से जोड़ दे
अमर तेरे प्राण, मिला तुझ को वरदान
तेरी आत्मा में स्वयं भगवान है रेऽऽऽ ॥ २ ॥
मनूष्य तू बड़ा महान है....
नयनों में ज्वाल तेरी गति में भूचाल
तेरी छाती में छुपा महाकाल है
पृथ्वी के लाल, तेरा हिमगिरी सा भाल
तेरी भृकुटि में तांडव का ताल है
निज को ले जानऽऽऽ निज को ले जान
जरा शक्ति पहचान, तेरी वाणी में युग का आव्हान है ॥ ३ ॥
मनूष्य तू बड़ा महान है....
धरती सा धीर तू है अग्नि सा वीर,
तू जो चाहे काल को भी थाम ले
पापों का प्रलय रुके पशुता का शीश झुके,
तू जो अगर हिम्मत से काम ले
गुरु सा गतिमान, पवन सा तू गतिमान,
तेरी नभ से भी ऊँची उड़ान है रेऽऽऽ
मनूष्य तू बड़ा महान है....

❖❖❖

जिनवाणी स्तुति

हे भारती माँ, हे भारती माँ, अज्ञानता से हमें तार देना । टेक
मुनियों ने समझी गुणियों ने जानी, शास्त्रों की भाषा आगम की वाणी।
हम भी तो जानें, हम भी तो समझें, विद्या का फल तो हमें मातु देना ॥
टेक
तू ज्ञानदायी हमें ज्ञान दे दे, रत्नत्रयों का हमें दान दे दे ।
मन से हमारे मिटा दे अंधेरे, हमको उजालो का शिव द्वार देना ॥
टेक
तू मोक्षदायी है संगीत तुझमें, हर शब्द तेरा है हर भाव तुझमें ।
हम हैं अकेले, हम हैं अधूरे, तेरी शरण माँ, हमें तार देना ॥
टेक

❖❖❖

* किसकी आँखो में क्या है *

माँ	की आँखों में	प्रेम करुणा
पिता	की आँखों में	कर्त्तव्य
बहिन	की आँखो में	ममता
भाई	की आँखों में	प्यार
बालक	की आँखों में	निर्दोषता
विद्यार्थी	की आँखों में	जिज्ञासा
गुरु	की आँखों में	ज्ञान
गरीब	की आँखों में	लज्जा
सज्जन	की आँखों में	विनम्रता
मित्र	की आँखों में	सहायता
देशभक्त	की आँखों में	राष्ट्रप्रेम

इष्ट-प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह भावना स्वामी ।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी ॥ १ ॥

हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी ।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी ॥ २ ॥

फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी ।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी ॥ ३ ॥

बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी ।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी ॥ ४ ॥

दुःखो में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी ।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी ॥ ५ ॥

दुःखी हो दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी ।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी ॥ ६ ॥

मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी ।
मनोभंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी ॥ ७ ॥

रहे सुख शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी ।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी ॥ ८ ॥

फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी ।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी ॥ ९ ॥

दुखों में आपको ध्यायें, नही यह भावना स्वामी ।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी ॥ १० ॥

❖❖❖

भावना दिन रात

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो ।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर घर बार हो ॥ टेक ॥

धर्म का प्रचार हो, अरु देश का उद्धार हो ।
और बिगड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो ॥ १ ॥

ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के प्रचार से, हिंसा का जग में ह्रास हो ॥ २ ॥

शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो ॥ ३ ॥

रोग अरु भय शोक होवे, दूर सब परमात्मा ।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा ॥ ४ ॥

❖❖❖

* विद्यार्थी को चाहिये *

कौये जैसी ..... चतुराई
बगुले जैसी .... एकाग्रता
कुत्ते जैसी .... नींद
साधु जैसा .... अल्पाहारी
महावीर जैसा .... गृहत्यागी

गुरुभक्ति (भूधरदासजी)

ते गुरु मेरे उर बसो, जे भव-जलधि जहाज,
आर तिरैं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषि राज ॥ १ ॥ टेक

मोह महारिपु जानिकै, छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ २ ॥ टेक

रोग उरग बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्यागो सब यह जान ॥ ३ ॥ टेक

रत्नत्रय निधी उर धरै, अरु निर्ग्रन्थ त्रिकाल।
मारयो काम खबीस को, स्वामी परम दयाल ॥ ४ ॥ टेक

पंच महाव्रत आचरै, पाँचो समिती समेत।
तीन गुप्ति पालै सदा, अजर अमर पद हेत ॥ ५ ॥ टेक

धर्म धरै दशलक्षणी, भावै भावना सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित रतन भण्डार ॥ ६ ॥ टेक

जेठ तपै रवि आकरो, सूखे सर-वर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपै, दाझे-नग्न शरीर ॥ ७ ॥ टेक

पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार।
तरु-तल निवसै साहसी, चालै झंझाधार ॥ ८ ॥ टेक

शीत-पड़े कपि-मद गले, दाहै सब वनराय।
ताल तरंगनि के तटै, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ९ ॥ टेक

इह विधि दुद्धर तप तपै, तीनों काल मंझार।
लागे सहज सरुप मैं, तन सो ममत निवार ॥ १० ॥ टेक

पूरव-भोग न चिन्तवें, आगम वाँछा नहिं।
चहुँगति के दुख-सो डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं ॥ ११ ॥ टेक

रंग-महल में पोढ़ते, कोमल सेज विछाय।
ते पश्चिम निशि भूमि मैं, सोवैं सवारि काय ॥ १२ ॥ टेक

गज चढ़ि चलते गरव सो, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालै करुणा अंग ॥ १३ ॥ टेक

वे गुरु चरण जहाँ धरैं, जग मैं तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़े, भूधर माँगे येह ॥ १४ ॥ टेक
ते गुरु मेरे उर बसो

❖❖❖

- गुरु भगवत-प्रेम की दीपशिखा है।
- आचरण रहित विचार कितने ही अच्छे क्यों ना हो उन्हे खोटे मोति की तरह समझना चाहिए।

समाधी मरण (द्यानत-राय)

गौतम स्वामी वन्दो नामी मरण समाधि भला हैं,
मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला हैं।
देव धर्म गुरु प्रीति महादृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने,
त्याग बाइस अभक्ष्य संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥ १ ॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधे,
वनिज करें पर द्रव्य हरें नहिं छहों कर्म इमि साधें।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुँ दानी,
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥ २ ॥

जाप जपैं तिहुँ योग धरे दृढ़ तन की ममता टारें,
अन्त समय वैराग्य सम्हारें ध्यान समाधि विचारे।
आग लगे अरु नाव डुबे जब धर्म विघन तब आवे,
चार प्रकार आहारी त्यागि के मन्त्र सुमन में ध्यावे ॥ ३ ॥

रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारे,
बात बड़ी है जो बनि आवे, भार भवन को टारे।
जो न बने तो घर मे रह-करि सबसो होय निराला,
मात-पिता सुत तिय को सौंपे निज परिग्रह इहि-काला ॥ ४ ॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुःखिया धन देई,
क्षमा क्षमा सबहिं सों कहिके मन की शल्य हनेई।
शत्रुन-सों मिल निज कर जोरे मैं बहु कीनी बुराई,
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब नखसो भाई ॥ ५ ॥

धन-धरती जो मुख सों माँगे सो सब दे संतोषे,
छहों काय के प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेष।
ऊँच-नीच घर बैठ जगह इक कछु भोजन कछु पै लै,
दूधाहारी क्रम क्रम तजि के छांछ आहार पहेले ॥ ६ ॥

छांछ त्याग के पानी राखे, पानी तज संथारा,
भूमि मांहि थिर आसन मांडे साधर्मी ढिग प्यारा।
जब तुम जानों यह न जपे है तब जिनवाणी पढिये,
यों कहि मौन लियो सन्यासी पंच-परम पद गहिये ॥ ७ ॥

चार आराधन मन मैं ध्यावें बारह भावना भावें,
दश-लक्षण मुनि-धर्म विचारे रत्नत्रय मन ल्यावै।
पैतीस सोलह षट्पन चारों दुइ इक वर्ण विचारै
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारे ॥ ८ ॥

अजर-अमर निज गुण सों पूरे परमानन्द सुभावे,
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावे।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखे,
अतिचार पाँचो सब त्यागे ज्ञान सुधा रस चाखै ॥ ९ ॥

हाड़-माँस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागे,
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में सेज उठे ज्यों जागें।
तहाँ ते आवे शिवपद पावे विल से सुक्ख अनन्तो,
"द्यानत" यह गति होय हमारी जैन-धर्म जय वन्तो ॥ १० ॥

❖❖❖

हार नहीं होती

लहरों से डरकर नौका पार नही होती।
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती ॥ टेक ॥

नन्हीं चीटीं जब दाना लेकर चलती हैं,
चढ़ती दीवारों-पर सौ बार फिसलती है ॥ १ ॥

मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरता गिरकर चढ़ना न अखरता है ॥ २ ॥

आखिर उसकी मेहनत बेकार नही होती,
कोशिश करने-वालों की हार नहीं होती ॥ ३ ॥

डुबकियाँ सिंधु में गोता खोर लगाता है,
जा जाकर खाली हाथ लौट आता है ॥ ४ ॥

मिलते न सहज ही मोति गहरे पानी मैं,
बढ़ता दूना उत्साह इसी हैरानी मैं ॥ ५ ॥

मुट्ठी उसकी खाली हर-बार नहीं होती,
असफलता एक चुनौती है स्वीकार करो ॥ ६ ॥

लहरों से डरकर नौका पार नही होती।
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती .....

❖❖❖

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ ॥ टेक ॥

प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधर जी को ध्याऊँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ ॥ १ ॥

योनि लख चौरासी माँही, घोर महादुःख पायो।
तेरी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो ॥ २ ॥

जानै थारो शरणा लीनो, अष्ट कर्म क्षय कीनों।
जामन मरण मेट के माता, मोक्ष-महाफल दीनों ॥ ३ ॥

ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशांग चौदह पूरव की, कर दो हमको ज्ञाता ॥ ४ ॥

बार-बार मैं विनऊँ माता, मिहरजु मोपर कीजै।
'पार्श्वदास' की अरज यही है, चरण शरण मोहि दीजै ॥ ५ ॥

❖❖❖

* शिक्षक को चाहिए *

- माता सी ममता।
- पिता सा प्यार।
- वैज्ञानिक सी सुझबूझ।
- तपस्वी सा मन।
- किसान जैसा उद्यम।

* खण्ड ४ *

प्रतिक्रमण (भजन)

गुरुदेव दया करके, मुझे जग से छुड़ा देना ।
पा जाऊँ मैं आतम को, वो राह दिखा देना ।।टेक।।
करुणानिधि नाम तेरा, करुणा को जगाओ तुम,
मैत्री के भावों को, हे नाथ जगा दो तुम ।
प्रतिपल समता में रहूँ, संवर ये सिखा देना ।।
गुरुदेव दया .....
लाखों को तारा है, मुझको भी तारो तुम,
मैं शरण पड़ा तेरी, मेरी ओर निहारो तुम ।
मेरा जनम मरण छूटे, वो भक्ति जगा देना ।।
गुरुदेव दया .....
मैं अनादि से घायल हूँ, उपचार कराओ तुम,
हो जाऊँ निरोग सदा, औषध वो पिलाओ तुम ।
पा जाऊँ परम पद को, वो राह चला देना ।।
गुरुदेव दया .....
टूटी हुई वीणा के सब, तार मिला दो तुम,
गाऊँ मैं मधुर संगीत, वो साज बना दो तुम ।
ये गीत जो बिछुड़ा है, गायक से मिला देना ।।
गुरुदेव दया .....
बहती हुई सरिता की, आवाज मिटाओ तुम,
अंतस में हे स्वामी, ज्योति प्रकटाओ तुम ।
ये बूँद जो बिछुड़ी है, सागर से मिला देना ।।
गुरुदेव दया .....

❖❖❖

श्रावक - प्रतिक्रमण

प. पू. मुनि श्री निर्वेग सागरजी विरचित

हे भगवन् ! जिनेन्द्र देव के अनुसार जिनधर्म का पालन करते हुए ग्रहण किये हुए नियमों में/व्रतों में जाने अनजाने में मन वचन काय की चंचलता से जो भी दोष लगे हों उन दोषों की शुद्धि एवं मन की पवित्रता हेतु भावशुद्धि पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। हे भगवन मैं सब जीवों के प्रति मैत्री-भाव रखता हुआ सबसे क्षमा चाहता हूँ सभी जीव मुझे क्षमा करें एवं मैं भी सभी जीवों को क्षमा करता हूँ मेरा किसी से बैरभाव नहीं है।

हे भगवन ! चार घातिया कर्मो से रहित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख एवं अनंत वीर्य रुप अनंत चतुष्टय से सहित समवशरण आदि दिव्य वैभव से युक्त अरिहंत परमात्मा को मेरा बारम्बार नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों रहित, आठ गुणों से सहित, लोक के अग्रभाग में स्थित, शरीर से रहित, अशरीरी सिद्ध परमात्मा को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, चरित्राचार रुप पंचाचारों से सहित, दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि देने में कुशल, मुनि संघ के नायक, आचार्य परमेष्ठी को मैं बारम्बार स्तुति करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मुनि शिष्यों को पढ़ाने वाले रत्नत्रय से विशुद्ध उपाध्याय परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

अट्ठाईस मूलगुणों के पालन करने में निरत, परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहनेवाले साधु परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

हे भगवन् ! मैं पापी हूँ, दुरात्मा हूँ, अल्पबुद्धि वाला हूँ, रागद्वेष से युक्त कषायी हूँ।

हे भगवन् ! मैंने दुष्ट कार्य किए, दुष्ट चिंतन किया, दुष्ट भाषण किया, अतः भीतर ही भीतर पश्चाताप की आग में जल रहा हूँ।

हे भगवन् ! आज तक मेरे मन में अहिंसा आदि धर्म पालन करने की भावनाएँ नही हुईं। मैं रात-दिन क्रोध रुपी अग्नि में जलता रहा हूँ, मैं निरंतर लोभ रुपी सर्प के द्वारा काटा गया हूँ।

हे प्रभो ! मैंने आज तक दीनों को अथवा सत्पात्रों को दान नहीं दिया, सत् चारित्र को अंगीकार नहीं किया है, मैंने कभी तप का आचरण नहीं किया और मैं निरंतर माया जाल, छल कपट करने में लीन रहा हूँ।

हे भगवन् ! मैं आपके पास आने में संकोच करता हूँ, मुझे डर लगता है। हे प्रभो ! वास्तव में हमारे जैसे नरों का जन्म ही व्यर्थ है। किन्तु फिर भी प्रभु आप दयालु हैं, करुणा निधान हैं ,संसार दुःख के वैद्य हैं, अनुपम कृपा अवतार हैं, परम पिता परमात्मा हैं। एक अज्ञानी बालक जिस तरह अपने माता-पिता के सामने अपनी तोतली भाषा में अपने हृदय की बात को ज्यों का त्यों बिना किसी छल-कपट के कह देता है, उसी प्रकार मैं भी अपने हृदय का हाल अपनी बुराई दुर्गुण अपने दोषों को आपसे विनय से प्रीतिपूर्वक कह रहा हूँ। मुझे विश्वास है आप निश्चित ही मुझ अज्ञानी पर कृपा करेंगे।

तीर्थंकर की स्तुति एवं कायोत्सर्ग (९ बार णमोकार पढ़े)

सौ इन्द्रों से पूजित श्री ऋषभ नाथ भगवान, तीन लोक को प्रकाशित करने वाले श्री अजितनाथ भगवान, संसारी प्राणियों को सुख के कारणभूत श्री सम्भवनाथ भगवान, मुनि गणों में श्रेष्ठ आदरणीय श्री अभिनन्दननाथ भगवान, कर्म रुपी शत्रु का नष्ट करने वाले सद्बुद्धि प्रदाता श्री सुमतिनाथ भगवान, अंतरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित श्री पद्मप्रभ भगवान, पाँच इन्द्रियों को दमन करने वाले श्री सुपार्श्वनाथ भगवान, चंद्रमा के समान उज्जवल गुणों से युक्त श्री चन्द्रप्रभ भगवान, तीन लोक में प्रसिद्ध श्री पुष्पदन्त

भगवान, तृष्णा रुपी अग्नि को शांत करने वाले श्री शीतलनाथ भगवान, भव्य प्राणियों का कल्याण करने वाले श्री श्रेयांसनाथ भगवान, चक्रवर्ती आदि मनुष्यों से पूजित श्री वासुपूज्य भगवान, निर्मल मोक्ष पद को देने वाले श्री विमलनाथ भगवान, अनंत गुणों के धारी श्री अनन्तनाथ भगवान, दया धर्म के उपदेशक श्री धर्मनाथ भगवान, शांति के प्रदाता श्री शांतिनाथ भगवान, कुंथु आदि छोटे-छोटे जीवों के रक्षक श्री कुन्थुनाथ भगवान, श्रमणों के नायक श्री अरनाथ भगवान, मोहरुपी योद्धा को नष्ट करने वाले श्री मल्लिनाथ भगवान, मुक्ति के मार्गरुप मुनिव्रत का उपदेश करने वाले श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान, अनाथों के नाथ श्री नमिनाथ भगवान, हरिवंश के तिलक बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान, घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान, वर्तमान शासन नायक तीन लोक का हित करने वाले श्री महावीर भगवान की मन से, वचन से और काय से मैं निरंतर स्तुति करता हूँ। जो मेरे द्वारा कीर्तित, वन्दित और पूजित है, लोक में उत्तम है तथा कृतकृत्य है ऐसे जिनेन्द्र चौबीस तीर्थंकर भगवान मेरे लिये आरोग्य लाभ, ज्ञान लाभ, समाधि और बोधि प्रदान करें।

श्रद्धावान्, विवेकवान् और क्रियावान् पुरुष सच्चा श्रावक कहलाता है। हे प्रभु ! मैंने वीतराग प्रभु को छोड़कर अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की आराधना की हो, लोभ, भय, ख्याति, पूजा, धन-पुत्रादि की चाह के वशीभूत हो, मिथ्यात्व का पोषण किया हो। आरम्भ परिग्रह में लीन गुरुओं की आराधना, सेवा की हो।

हे भगवन् ! आत्मिक सुख का साक्षात् कारण पवित्र जिनधर्म में यदि मेरी श्रद्धा न रही हो, श्रद्धा में मलिनता उत्पन्न हुई हो तो हे प्रभु! मैं आज साक्षात् आपके सामने क्षमा मांगता हूँ, मेरे वे दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मेरी जिनधर्म में दृढ़ता हो, वीतरागी, निष्परिग्रही, दया धर्म के उपदेशक देवशास्त्र गुरु के प्रति आस्था, श्रद्धा, भक्ति में जो कुछ भी दोष लगे हों, वह सभी दोष मिथ्या

होवें, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने अज्ञान एवं अविवेक के कारण अभक्ष्य पदार्थो का सेवन किया हो, दूसरों को कराया हो, करने वालों की अनुमोदना की ही तो मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे प्रभु ! घोर दुःखों अर्थात् नरक के कारणभूत सात प्रकार के व्यसन माँस सेवन, मदिरा सेवन, जुआँ खेलना, चोरी करना, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन एवं शिकार खेलना इन व्यसनों को मैंने किया हो, कराया हो, करने की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने राग के वशीभूत हो धर्म का बहुमान न करते हुए बुरी संगति से अज्ञान के वशीभूत होकर नरक का द्वार, दुर्गति का कारणभूत, अनेक त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा का साधन, रात्रि में अन्न-जल का सेवन किया हो, कराया हो, करने वालों की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने अभिमान और अज्ञान के कारण धर्म का पालन करने में लज्जा का अनुभव करते हुये रसना इन्द्रिय के वशीभूत हो बिना छने जल का प्रयोग किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो, होटल आदि में निर्मित अभक्ष्य खाद्य सामग्री का मन वचन काय से सेवन किया हो, कराया हो, करने वाले को अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने बहुत दिन पहले बने हुए त्रस जीवों के कलेवर ऐसे अचार, मुरब्बा का सेवन किया हो। साबूदाना, ब्रेड पापुलर च्वाइंगम आदि का सेवन किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिए मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! खोटी संगति के कारण, लत पड़ने के कारण सभी को अनिष्ठ लगने वाले, शरीर को हानिकारक, संसार कलह का

कारण, धर्म को नष्ट करने वाली तम्बाखू, जर्दा, पान-मसाला, अफीम, चिलम, गांजा, शराब, चरस अन्य नशीली दवाईयों का, सिगरेट, बीड़ी आदि धूम्रपान का सेवन किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने अपने शरीर के श्रृंगार के लोभ के वशीभूत होकर घोर नरक दुःखों के कारण, तिर्यञ्च योनि में जन्म के कारणभूत हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री का प्रयोग जैसे शैम्पू, क्रीम-पॉवडर (अंग्रेजी गोबर) अनेक प्रकार के सुगंधित तेल, लिपिस्टीक, नेल पॉलिश, परफ्यूम, चमड़े के बने जूते, बेल्ट, बॅग, पर्स आदि का प्रयोग किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो में पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने व्यापार, गृह सम्बन्धी कार्यो के निमित्त एक इन्द्रिय जीव (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व वनस्पति), दो इन्द्रिय (इल्ली, शंख, सीप, कृमि आदि) तीन इन्द्रिय जीव (चींटी, खटमल, जूँ आदि), चार इन्द्रिय जीव (मक्खी, मच्छर, पतंगा आदि) पंचेन्द्रिय जीव गाय, मनुष्यादि जीवों को पीड़ा पहुँचाई हो, उनको मारा हो, उनका वध किया हो, उनका छेदन-भेदन आदि किसी भी तरह दुःख पहुँचाया हो, वह सब पाप मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मेरे चलने-फिरने में, दौड़ने में, वस्तु उठाने-रखने में, मूत्र-मल, कफ आदि विकारों का उत्सर्ग करने में, सोने में, करवट लेने में, झाड़ू-पोंछा लगाने में, भोजन बनाने में, अग्नि जलाने में कपड़े धोने में, पाऊडर का पानी नाली में डालने में, भूमि खोदने में, स्कूटर-मोटर-गाड़ी आदि चलाने में जीवों को मेरे द्वारा पीड़ा पहुँची हो, उनका घात हुआ हो तो, हे प्रभु ! मैं आपके समक्ष उन दोषों की शुद्धि हेतु आलोचना, निंदा करता हूँ। मेरा दुष्कृत्य मिथ्या

होवें मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने क्रोध, मान, माया, लोभ, हँसी, भय आदि के वशीभूत होकर असत्य भाषण किया हो, झूठ बोला हो, दूसरों को कष्टप्रद हों ऐसे मर्मभेदी वचन बोले हों, गाली तथा अपशब्द कहे हों, बुरा बोला हो, निंदा की हो, चुगली की हो, राग को बढ़ाने वाले कामवर्द्धक वचन बोले हो, कुचेष्टा की हो, आपस में बैर बढ़ाने वाले, फूट डालने वाले वचन कहे हों, असत्य खबर आदि न्यूज में दी हो, मिथ्या प्रचार किया हो तो वे मेरे सब दुष्कृत्य मिथ्या होवें, व्यर्थ में बकवास की हो, अनावश्यक एवं बहुत वाद-विवाद किया हो, उसके लिये मैं पश्चाताप करता हूँ, मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवें।

हे प्रभु ! मैने प्रमाद, लोभ आदि के वशीभूत हो बिना दिया हुआ द्रव्य, धन वस्त्र, मकान आदि को लिया हो, जमीन आदि का हरण किया हो, कम मूल्य की वस्तु अधिक मूल्य में बेची हो, चोरी किया माल खरीदा हो, राज्य के नियमों के विरुद्ध, सेलटेक्स (विक्रयकर) इन्कमटेक्स (आयकर) प्रोपर्टी टेक्स (सम्पत्तिकर) आदि का भुगतान नहीं किया हो, तेल, घी, चावल, गेहूँ आदि सामग्री में मिलावट किया हो, नाप-तौल करने में गड़बड़ी की हो, घूसखोरी अर्थात् रिश्वत द्वारा गलत कार्यो को सम्पन्न कराया हो, किया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो तो मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने काम इन्द्रिय, विषय वासनाओं के वशीभूत हो, अब्रह्म मैथुन कर्म किया हो, परस्त्री सेवन किया हो, वेश्या सेवन किया हो, स्वस्त्री को छोड़कर अथवा ब्रह्मचर्य आश्रम में, विद्यार्थी जीवन में रहते हुए अन्य महिला वर्ग में माँ, बहिन की दृष्टि छोड़कर अन्य काम विकार की दृष्टि से देखा हो, उनके मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन पाँच इन्द्रियों के विषयों के सेवन में गृद्धता रखी हो, अश्लील हरकत की हो, चारित्र को विकृत करनेवाले चलचित्र पिक्चर देखी हो, कामवर्द्धक पुस्तकों का पठन किया हो । विकार ग्रस्त होकर

अंगोपांग की प्रवृत्ति की हो तो प्रभु मैं अपनी निंदा करता हुआ आलोचना करता हूँ मेरा यह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे प्रभु ! लोभ के वशीभूत हो मैंने सोना-चाँदी, मकान, जमीन, दुकान, गाय-भैंस, रुपया-पैसा, भोगोपभोग सामग्री आदि का संग्रह किया हो। जड़ पदार्थो को इकट्ठा करने की इच्छा रखी हो, धन के प्रति अति गृद्धता, लोलुपता, मूर्च्छा रखी हो, धन का न स्वयं उपयोग किया हो, न ही दूसरों को दान दिया हो, हमेशा जोड़-जोड़ कर धन रखा हों तथा परिग्रह संग्रह करने में जो भी पापकर्म किया हो वह सब दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने श्रावको के करने योग्य आवश्यक कार्यो में प्रमाद किया हो, अनादर किया हो, उत्साह न रखा हो, रुचि न रखी हो, रात्रि में पूजन आदि सामग्री धोई हो, कुँए से जल खींचा हो, जीवानी डालने में प्रमाद किया हो, अहंकार के कारण पूजन करते हुए क्रोध किया हो, किसी को अपशब्द कहा हो, जल्दी-जल्दी बिना अर्थ एवं भाव के पूजा की हो, पूजा करते समय तथा अन्य धर्मादिक कार्यो को करते समय भावों मे मलिनता आई हो, पूजन करते समय दूसरों से बात की हो तो वे सब पाप मिथ्या होवें। हे भगवान मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रमाद किया हो, जिनवाणी की विनय न की हो, संयम ग्रहण करने में भय किया हो, आलस्य किया हो, अव्रतों का सेवन किया हो। शरीर के वशीभूत होकर, मोह के कारण अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, कायक्लेश आदि तप न किया हो। आहार दान, औषध दान, अभयदान उपकरण आदि दान देने में कृपणता की हो, मन मलीन किया हो तो वह सब मेरे दुष्कृत्य मिथ्या होवें, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने चारित्र मोहनीय कर्मोदय के वशी भूत हो अथवा समीचीन पुरुषार्थ न कर पाने के कारण दर्शन, व्रत सामायिक प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति अथवा दिवामैथुन त्याग,

ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रह त्याग अनुमति त्याग एवं उद्दिष्ट त्याग इत्यादि श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाओं को न स्वयं ग्रहण किया न दूसरों को करवाया और न ही पालन करने वाले त्यागी व्रतियों की अनुमोदना की तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे प्रभु ! पञ्च परमेष्ठी की शरण रुप दर्शन प्रतिमा, अहिंसा सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह परिमाण रुप पाँच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्डविरति रुप तीन गुणव्रत, सामायिक प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण एवं अतिथि संविभाग रुप चार शिक्षाव्रत इस प्रकार कुल १२ व्रत रुप व्रत प्रतिमा, त्रिकाल सामायिक रुप सामायिक प्रतिमा पर्वों में उपवास रुप प्रोषधोपवास प्रतिमा, जीवदया पालन रुप सचित त्याग प्रतिमा, इन्द्रिय संयम एवं प्राणी संयम रुप दिवा मैथुन त्याग अथवा रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग अथवा परिग्रह त्याग प्रतिमा अनुमति त्याग प्रतिमा एवं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा रुप ग्यारह प्रतिमाओं के पालन करने में मन वचन काय से प्रमाद पूर्वक अज्ञानवश जो दोष लगे हों, वे सब मिथ्या होवे, मैं अपनी निन्दा करता हूँ आलोचना करता हूँ।

हे प्रभो ! शारीरिक मानसिक आदि समस्त दुःखों को नष्ट करने वाले मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण, बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ इसके सिवा कोई दूसरा मोक्ष मार्ग नहीं हैं। यह केवली भगवान द्वारा कथित परिपूर्ण, समता रुप माया मिथ्या निदान शल्य से रहित, शांति और क्षमा का मार्ग है। उस निर्ग्रन्थ लिंग से बढ़कर अन्य कोई मोक्ष का हेतु वर्तमान में नही है, भूतकाल में नही था, और न ही भविष्यकाल में होगा। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से विरक्त होता हुआ मैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में श्रद्धान करता हूँ आचरण करता हूँ। मेरे द्वारा दिवस और रात्रि में जो कोई भी अतिचार, अनाचार हुए हो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य समस्त पाप मिथ्या हो

निष्फल होवे।

हे भगवन ! दैवसिक रात्रिक क्रियाओं में दुष्ट चिन्तन किया हो, दुर्वचन कहे हो, मानसिक दुष्परिणाम किये हों, खोटे स्वप्न देखें हों, खोटा आचरण किया हो, जीवों की विराधना की हो, इसके सिवा अन्य उच्छ्वास में, खाँसी में, जम्भाई में पलक झपकाने में हाथ-पैर के हिलाने में, सूक्ष्म अंगो के हलन-चलन में दृष्टि को चलायमान करने इत्यादि अशुभ कियाओं तथा सूत्रपाठ आदि क्रियाओं को विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररुपण किया हो, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवें।

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों की आलोचना करता हूँ। देश के, आसन के, स्थान के, काल के, मुद्रा के, कायोत्सर्ग के, नमस्कार के विधि के, आवर्त आदि के आश्रय से प्रतिक्रमण में मन, वचन, काय से जो आसादना की गई हो, कराई गई हो, आश्रय करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो प्रतिक्रमण सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या होवे।

हे प्रभो ! मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

(कायोत्सर्ग करें)

❖❖❖

जो व्यवहार हमारे मन को अच्छा नही लगता है
वह व्यवहारिक कार्य हम दूसरे के लिए
भूलकर भी नहीं करें।

आहार दान विधि

निज और पर के कल्याण के लिये, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका को चार प्रकार का दान देना **दान कहलाता** है। दान के **चार** भेद हैं- आहार दान, औषधि दान, ज्ञान दान तथा अभय दान।

दान से पाप कर्म नष्ट होते हैं। पाप कर्म नष्ट होने से धर्म की ओर बढ़ते हैं, और धर्म से ही संसार में शान्तिपूर्वक जीवन जिया जा सकता है। धर्म के बिना हमारा जीवन पशु के समान है। चार प्रकार के दान देने वाले व्यक्ति भोगभूमि के सम्पूर्ण सुखों को भोगते हुए परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

दान की विशेषता - दान देने की विधि, उत्तम वस्तु, श्रद्धादि गुणयुक्त दाता एवं पात्रता पर निर्भर है। आचार्यों ने दान देने योग्य उत्तम, मध्यम एवं जघन्य **तीन पात्र** बताये हैं। जिसमें उत्तम पात्र दिगम्बर साधु मुनिराज ही हैं। व्रती सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को मध्यम पात्र कहते है। सम्यग्दृष्टि अव्रती मनुष्यों को जघन्य पात्र कहते हैं। साधु श्रावकों के धर्म साधन के लिए, क्षुधा का उपशमन करने के लिये तथा मोक्ष की यात्रा के साधन हेतु आहार लेते हैं। आहार चाहे मुनि आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी जिस किसी को भी शुद्ध मन, वचन, काय से दिया जाय,तभी उसका योग्य फल मिलता है।

मुनिराज को आहार, आठ वर्ष की आयु के बाद बालक, बालिका, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष जैन श्रावक दे सकता है।

आहार विधि इस प्रकार से है-

प्रतिग्रहण विधी

१. मुनियों के लिए पड़गाहन विधि :- हे स्वामिन्! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु, अत्र-अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ, आहार, जल शुद्ध है।

२. आर्यिकाओं के लिए पड़गाहन विधि :- हे माताजी ! वन्दामि-वन्दामि-वन्दामि, अत्र-अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

३. क्षुल्लक/ऐलक के लिए पड़गाहन विधि :- हे स्वामिन्! इच्छामि, इच्छामि, अत्र-अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

पड़गाहन के बाद शुद्धि

मुनि महाराज की विधि मिलने के बाद, जब आपके सामने खड़े हो जाते हैं, तब तीन प्रदक्षिणा देना चाहिए उसके बाद नमोऽस्तु महाराज! मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार जल शुद्ध है, गृह प्रवेश कीजिए'' ऐसा कहना चाहिए।

माताजी के लिए वन्दामि एवं ऐलक-छुल्लक जी के लिए इच्छामि कहना चाहिए भोजन शाला के द्वार पर शुद्ध जल से अपने पैर अच्छी तरह धोकर महाराज जी को भोजन शाला में प्रवेश करने के लिए प्रार्थना करें। पुनः हे महाराजजी ! नमोऽस्तु, उच्चासन पर विराजमान होइये, ऐसा कहें।

आसन पर विराजमान होने के बाद थाली में मुनि महाराज जी के पैर गरम पानी से धोंए। फिर इस प्रकार अष्ट द्रव्य से पूजा करें।

पूजा विधी

आह्वानन-''हे मुनिराज अत्र अवतर, अवतर, अवतर, अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, अत्र मम सन्निहितो भव, भव, वषट् सन्निधिकरणं'' ऐसा कहकर पुष्प क्षेपण करें। फिर अष्ट द्रव्यों के अर्घ बोलकर मुनिराज को नमस्कार करें।

आहार दान के लिए शुद्धि

चौके में बनाई हुई समस्त वस्तुओं को एक थाली में थोड़ी-थोड़ी लगाकर मुनिराज के सामने लावें और एक-एक वस्तु का नाम बतलावे, फिर मुनिराज जिसे निकलवाये उसे थाली में से अलग कर लेना चाहिए इसके बाद हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है। **''मुद्रा छोड़कर अंजुली बांधकर''** भोजन ग्रहण कीजिए। फिर नमोऽस्तु करें। फिर महाराज के हाथ धुलावें। महाराज जी के खड़े होने पर भक्ति बोलने के बाद पहले पानी दें। साधु की प्रकृति पर भी ध्यान देते हुए आहार करायें।

दाता देते दान है, बदले की ना चाह।
चाह दाह से दूर हो बड़े बड़ो की राह॥

आहार दान का फल

आत्म-विशुद्धि, धर्मप्रेम, गुरु-सेवा, पाप का नाश, पुण्य की प्राप्ति, यश की प्राप्ति और अन्त में मोक्ष प्राप्ति आहार दान का फल है।

अन्तराय- केश (बाल), मरा हुआ जीव, सचित्त बीज, नाखून, चर्म, रक्त मांस आदि के आहार में आने पर रास्ते में मांस, शव देखने पर, जीव मरने पर, मांस भक्षी पशु चौके में आ जाने पर, स्त्री के छूने पर, बर्तन गिरने पर, मनुष्य को चक्कर आकर गिरने पर, छोड़ी हुई चीज एवं अभक्ष्य भक्षणं होने पर, अग्निदाह होने पर, करुण रोने की आवाज सुनने पर, दूसरों की मार-काट आदि कठोर शब्द सुनने पर तथा और भी अनेक कारणों से भोजन में अन्तराय(विघ्न) हो जाता है।

आहार की वस्तुओं की मर्यादा

सामग्री	वर्षा ऋतु (चौमासा)	शीत ऋतु	ग्रीष्म ऋतु
१. दालिया, रवा, आटा, मैदा, मिर्च (मसाला), लाई आदि कुटे व गर्म किये।	३ दिन	७ दिन	५ दिन
२. मिठाई, खोवा, पेड़ा, बर्फी, लड्डू	२४ घण्टे	१ दिन	१ दिन
३. बूरा, बतासा	६ दिन	३० दिन	१५ दिन
४. पापड़, बड़ी, सेमइयाँ, पूरी-पराठा, हलुवा	१२ घण्टे	१२ घण्टे	१२ घण्टे
५. सेव, बूंदी, तेल आदि से तले पदार्थ।	२४ घण्टे	२४ घण्टे	२४ घण्टे
६. खिचडी, दाल भात, कढ़ी, रोटी, आचार, मुरब्बा, दही, मट्ठा।	६ घण्टे	६ घण्टे	६ घण्टे
७. घी, तेल (स्वाद न बिगड़े)	१ वर्ष	१ वर्ष	१ वर्ष
८. सैंधा नमक (पिसा हुआ)	४८ मिनीट	४८ मिनीट	४८ मिनीट
९. (प्रसूत) बकरी, भेड़ का दूध	८ दिन बाद शुद्ध होता है।		
(प्रसूत) भैंस का दूध	१५ दिन बाद शुद्ध होता है।		
(प्रसूत) गाय का दूध	१० दिन बाद शुद्ध होता है।		

❖❖❖

चौका शुद्धि

चौका का अर्थ होता है चार, शुद्धि का अर्थ शुद्धता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि होना चौका की शुद्धि है। चौका से मतलब है भोजन बनाने का एवं भोजन करने का स्वच्छ स्थान।

उपर्युक्त चार प्रकार की शुद्धियों के चार-चार भेद हैं, इस प्रकार सब मिलाकर सोलह भेद हो जाते हैं, जिसे श्रावक गण सोला कहते हैं।

सोलह प्रकार की शुद्धि इस प्रकार है :-

(१) द्रव्य शुद्धि - आहार में उपयोग आने वाली समस्त वस्तुओं की शुद्धि द्रव्य शुद्धि है।

१. अन्न शुद्धि - खाद्य सामग्री सड़ी, गली, घुनी न हो। उसे यथोचित धोकर धूप में सुखा लें। बिना धुले अन्न, मसाले आदि का प्रयोग योग्य नहीं हैं। गेहूँ आदि को सूख जाने के पश्चात् **हाथ की चक्की** या **घर में लगी इलेक्ट्रिक** चक्की से पीसना चाहिए एवं मर्यादित वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए **प्लास्टिक, चीनी मिट्टी के बर्तन** का उपयोग नहीं करना चाहिए।

२. जल शुद्धि - जल शुद्धि में दो बातें आती हैं-पहली जल को छानना और दूसरी जल में से निकले जीवों की रक्षार्थ जीवाणी को यथास्थान पहुँचाना। जल छानने के लिए ऐसे मोटे कपड़े का प्रयोग करना चाहिए, जिससे सूर्य की रोशनी न दिखे। जल छानने का कपड़ा दोहरा रहना चाहिए जल छानने के पश्चात् छन्ने को तुरंत ही सुखाना चाहिए क्योंकि अधिक देर गीला रहने से उसमें जीवाणु (बैक्टेरिया) की उत्पत्ति हो जाती है। जीवाणी करने में इतनी सावधानी आवश्य रखना चाहिए की जीवाणी को **कुंदे वाली बाल्टी द्वारा धीरे-धीरे कुँए में डालना चाहिए** छने पानी को तुरन्त उबाल लेना चाहिए।

३. अग्नि शुद्धि - ईंधन देख-शोधकर उपयोग करना चाहिए।

४. **कर्ता शुद्धि** - भोजन बनाने वाला स्वस्थ हो तथा नहा धोकर शुद्ध कपड़े पहने हो, **नाखून** बड़े न हो, इत्र, नेल पॉलिश, लिपिस्टिक, पाउडर इत्यादि न लगावें, रेशमी साड़ी एवं **काले रंग, ऊनी व गीला तथा गन्दा कपड़ा न पहनें**, अंगुली बगैरह कट जाने पर खून का स्पर्श खाद्य वस्तुओं से न हो, गर्मी में पसीना का स्पर्श न हो, पसीना खाद्य वस्तुओं में न गिरे, यह सावधानी रखना चाहिये।

(२) **क्षेत्र शुद्धि** - आहार का स्थान स्वच्छ व शुद्ध होना क्षेत्र शुद्धि है।

१. **प्रकाश शुद्धि** - रसोई में पर्याप्त सूर्य का प्रकाश रहता हो।

२. **वायु शुद्धि** - रसोई में शुद्ध हवा का आवागमन होता होवे।

३. **स्थान शुद्धि** - आवागमन का सार्वजनिक स्थान न हो, जाले न हो, स्वच्छ धुला हुआ होना चाहिए कच्चे मकानों में चंदोबा होना आवश्यक है।

४. **दुर्गंधता से रहित** - हिंसादिक कार्य न होता हो, आसपास मांस-मछली की दुकान न हो, कत्लखाना न हो, किसी प्रकार की बदबू न आती हो।

(३) **काल शुद्धि** - योग्य समय का होना।

१. **ग्रहण काल शुद्धि** - चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण का काल न हो।

२. **शोक काल शुद्धि** - शोक, दुःख अथवा मरण का काल न हो।

३. **रात्री काल शुद्धि** - रात्रि का समय न हो। सूर्योदय के बाद ही चौके में प्रवेश करें।

४. **प्रभावना काल शुद्धि** - धर्म प्रभावना अर्थात् उत्सव का काल न हो।

(४) **भाव शुद्धि** - परिणामों में विशुद्धि का होना।

१. **वात्सल्य भाव** - पात्र और धर्म के प्रति वात्सल्य होना।

२. **करुणा भाव** - सब जीवों एवं पात्रों के ऊपर दया का भाव।

३. **विनय भाव** - पात्र के प्रति विनय के भावों का होना।

४. **दान भाव**- कषाय रहित और हर्ष सहित वस्तु को हितकारी भाव से देना।

प्रत्येक श्रावक को सोलह प्रकार की शुद्धि को जानकार आहार तैयार करके देना चाहिए।

❖❖❖

नारी-कर्त्तव्य

गृहस्थी रुपी गाड़ी पति-पत्नी रुपी दो पहियों के आधार पर चलती है। धर्मात्मा एवं चतुर दाम्पत्य के बिना गृहस्थ धर्म का निर्वाह पूर्णरुपेण नहीं हो सकता। अष्ट मूलगुण, षड़ावश्यक एवं ग्यारह प्रतिमाओं का जो वर्णन शास्त्रों में किया गया है वह श्रावक और श्राविकाओं को समान रुप से पालने-योग्य है। विशेष इतना है कि गृहस्थ धर्म का प्रतिपालन विवेकशील एवं पाप-भीरु नारियों के सहयोग से ही हो सकता है। किन्तु पाश्चात्य फैशन रुपी भूत के आधीन रहने वाली-असंस्कारीत नारियों से नहीं।

● जो स्त्रियाँ प्रमाद आदि के कारण शुद्ध भोजन बना कर अपने कुटुम्ब आदि को नहीं खिला सकती है, जिन्हें बाजार का आटा मसाला, अचार, पापड़, नमकीन एवं मिठाई आदि अभक्ष्य पदार्थो के खाने-खिलाने के ग्लानि नहीं है तथा जीवदया का-भाव न होने से जो बिना छने जल का प्रयोग करती हैं, वे स्त्रियाँ अपने और परिवार के धर्म का विघात करने के कारण परलोक में जलचर जीवों में उत्पन्न होती हैं।

● जो स्त्रियाँ प्रमाद, अज्ञान, भूख आदि की व्याकुलता या अन्य किसी कारण से बिना शोधन किये दाल-चावल आदि धान्य ओखली आदि में कूटती हैं तथा जीव युक्त अनाज आदि धूप में सुखा देती हैं और भड़भूँ से भुँजा लेती हैं, वे अनन्त-काल तक संसार में परिभ्रमण करती हैं।

● जो स्त्रियाँ मन, वचन और काय से जीवरक्षा का प्रयत्न नहीं करती, शोधन किये बिना ही गेहूँ आदि धान्य पीसती है एवं पिसाती हैं तथा बिना शोधन किये ईंधन जलाती हैं, परभव में कूकरी, शूकरी, गधी, सर्पिणी, भैंस एवं कुत्ती आदि नीच योनियों में जन्म लेती हैं।

• जो स्त्रियाँ बिना प्रयोजन कच्चे फल, फूल, पत्ते आदि वनस्पति का छेदन-भेदन करती हैं, उनके शरीर के अंग कुष्ठ आदि रोगों से गल-गल कर छिन्न-भिन्न होते रहते हैं।

• जो स्त्रियाँ पकवान आदि बनाते समय तेल, घी, गुड़ तथा शक्कर आदि से लिप्त हाथ यथा-तथा दीवारों आदि में पौंछ देती हैं, तथा शक्कर गुड़ के मैल आदि से लिप्त वस्त्र बिना धोये यद्वा-तद्वा जमीन आदि पर डाल देती हैं जिससे अनेक (चींटी, मक्खी,मकोड़े आदि) जीवों का सामूहिक घात हो जाता है, उस पाप के फल से वे एकेन्द्रिय पर्याय में अथवा इतर-निगोद में निरन्तर पैदा होती रहती हैं।

• जो स्त्रियाँ वस्त्र से छाने बिना ही तेल, घी, दूध आदि स्वयं खाती हैं और परिवार को खिलाती हैं, वे भव-भव में अन्धी होती हैं।

• जो स्त्रियाँ मक्खन निकाल कर उसे ४८ मिनिट के भीतर गर्म नहीं करतीं तथा आलू, प्याज, लहसुन, बैंगन और नवनीत आदि स्वयं खाती हैं एवं परिवार को खिलाती हैं, वे बन्धन, मारण, ताड़न तथा छेदन-भेदन आदि दुःखों को प्राप्त होती हैं।

• जो स्त्रियाँ भिण्डी, करेला आदि सब्जिओं को चाकू आदि से सुधारते समय विवेक नहीं रखतीं, अथवा भिण्डी आदि को बिना शोधन किये ही आग में साबित भूँज लेती हैं, उन्हे निरन्तर कोल्हू आदि यन्त्रों में पेला जाता है।

• जो स्त्रियाँ चातुर्मास में भी पत्ती वाला शाक एवं साबित अनाज स्वयं खाती हैं और कुटुम्ब को खिलाती हैं, तथा केतकी, नीम और सहजना आदि के फूल, कन्दमूल आदि एवं कच्ची गीली हल्दी का भक्षण करती-कराती हैं, वे नीच योनियों में अनेक प्रकार के भयंकर दुःख भोगती हैं।

• जो स्त्रियाँ नाना प्रकार के व्यञ्जन, पकवान तथा दाल-भात-रोटी आदि बनाने में निपुण नहीं हैं, रसोई-घर एवं चंदेवा आदि का सम्मार्जन नहीं करतीं, उन्हे एकदम काले और गन्दे रखती हैं; पाउडर साबुन से बर्तन साफ करती हैं, और उन्हें कई घण्टों तक गीले ही पड़े रहने देती हैं, रसोईघर में भोजन-सामग्री ढक कर नहीं रखतीं, चप्पल पहिन कर रसोई बनाती हैंऔर रसोई के बर्तन कई घण्टों तक जूठे पड़े रहने देती हैं वे भव-भव में कर्मकरी अर्थात् दासी आदि पर्यायों को प्राप्त करती हैं।

• जो स्त्रियाँ प्रमाद के वशीभूत हो दो-दो, तीन-तीन दिन तक फ्रिज में रखे हुए गीले आटे की रोटियाँ तथा बनी हुई सब्जी आदि स्वयं खाती और खिलाती हैं, जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर रसोई आदि को जूठा कर देती हैं तथा उत्तम घी, मावा आदि पदार्थों में जूठे पदार्थ मिला देती हैं, जो सदोष भोजनादि को शुद्ध कह देती हैं, जो अशुद्ध भोजन करनेवाले बालकों की शुद्धि नहीं करती, दूषित मन, वचन, काय से साधर्मियों को भोजन कराती हैं एवं और भी अपने अनेक कर्त्तव्यों का पालन नहीं करतीं, वे जन्म-जन्म में दरिद्री और अंगहीन होती हैं।

• जो स्त्रियाँ घर आदि को झाड़ते, बुहारते, लीपते, पोतते एवं रंग रोगन आदि करते समय तथा वस्त्र आदि धोते समय जीवों की रक्षा का ध्यान नहीं रखतीं तथा गर्म-जल में बिना छना ठण्डा जल मिला कर स्नान करती एवं कराती हैं, वे-पंच-परावर्तन-रुप संसार में परिभ्रमण करते हुए दीर्घ काल तक नरकादि गतियों के दुःख भोगती हैं।

• जो स्त्रियाँ क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक एवं नाखून पॉलिस आदि हिंसात्मक प्रसाधनों से शरीर का श्रृंगार करती हैं, जिनेन्द्र-दर्शन या पूजन किये बिना भोजन करती हैं, अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व के

दिनो में भी वस्त्र तथा शरीर आदि के लिए व्रत-नियमों का भंग कर देती हैं, वे भव-भव में शारीरिक और मानसिक भयंकर दुःख भोगती हैं।

• जो स्त्रियाँ लोभ के वशीभूत होकर दूसरों के दूतीपने का कार्य करती हैं, दूसरों (देवरानी, जेठानी, सास एवं ननद आदि) का धन हरण करती हैं, धरोहर हड़प लेती हैं तथा कषायों से वेष्टित रहती हैं, वे अढ़ाई पुद्गल परावर्तन काल पर्यन्त निगोद से नहीं निकलती हैं।

• जो स्त्रियाँ माया कषाय से ग्रसित रहती हैं और छोटी-छोटी बातों पर कलह करती हैं, वे नियमतः तिर्यंच गति में जन्म लेकर सींगो से लड़ती हैं पश्चात् संक्लेश परिणामों से मरकर नरक जाती हैं।

• जो स्त्रियाँ चप्पल पहिन कर मन्दिर जाती हैं, मौजे पहिने हुए देव, शास्त्र, गुरु के दर्शन करती हैं, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, शरीर शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और उपकरण आदि की शुद्धि के बिना ही देवपूजन और आहारदान आदि धार्मिक कार्य करती हैं, वे गर्भपात के सदृश दोष से दूषित होती हैं।

• जो स्त्रियाँ अपने गर्भस्थ बालक-बालिका की स्वयं अपने ही हाथों से हत्या करती हैं, अर्थात् गोली आदि खाकर गर्भपात करती-कराती हैं, वे अनन्त-काल तक क्षुद्रभव धारण करती हुई एव श्वाँस में १८ बार जन्म-मरण की भयंकर वेदना का वेदन करती हैं।

• जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्यव्रत को दूषित करती हैं, ब्रह्मचर्यव्रत को दूषित करनेवाली वेश-भूषा पहनती है और नाना प्रकार से शरीर को सुसज्जित कर उसका प्रदर्शन करती हैं, वे चाण्डाल कुल में जन्म लेती हैं।

• जो स्त्रियाँ मुनियों को आहार देते समय अधिक बोलती हैं, कफ आदि थूकती हैं, जम्भाई लेती हैं, क्रोध करती हैं, कृपणता करती हैं, ईर्ष्या या मात्सर्यभाव रखती हैं, मनोभावना हीन रखती हैं और आहारदान देने में प्रमाद करती हैं, वे भव-भव में घोर दुःखों की भाजन होती हैं।

• जिन स्त्रियों के हृदय में सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का दृढ़ श्रद्धान, जैनतत्त्व की रुचि और जीवरक्षा का भाव नहीं है, स्त्री-पर्याय उनका कभी पीछा नहीं छोड़ती अर्थात् उन्हें भव-भव में स्त्री पर्याय ही प्राप्त होती रहती है।

इस प्रकार और भी अनेक प्रकार के दूषण हैं जो स्त्रियों में बहुलता से पाये जाते हैं, अतः अपनी आत्मा का कल्याण करने हेतु मायाचारी आदि समस्त गुणों का प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए।

❖❖❖

*** गुरु सुमन ***

गुरु की प्रताड़ना - पिता के प्यार से अच्छी होती

महाव्रती तो हमेशा है - कमी है तो सिर्फ मार्ग पर चलनेवालों की

आनंद का अलंकार - अध्ययन चिंतन मनन व्रती होने पर होता है।

गुरुता श्रेष्ठता - गुणों से आती हैं उँचे आसन से नही आती है।

रजोधर्म स्त्री के कर्त्तव्य

स्त्रियों के स्वभावतः प्रतिमाह रजस्राव होता है, जिसकी अशुद्धि तीन दिन पर्यन्त रहती है : चौथे दिन स्नान कर अपने पति-पुत्र के लिए भोजन बनाने की आज्ञा शास्त्रों में है। आहार-दान, पूजन, विधान, हवन आदि धर्मकार्यों के लिए (यदि पूर्ण शुद्धता है तो) पाँचवे दिन शुद्ध मानी जाती हैं।

बीसवीं शताब्दी के यौवन काल में शिक्षा का अधिकांश अभाव था, इसलिए अज्ञानता के कारण स्त्रियाँ रजस्वला अवस्था में करने योग्य और न करने योग्य कार्यों को प्रायः नहीं जानती थीं। वर्तमान में शास्त्र प्रकाशन, पठन-पाठन एवं उपदेशादि के माध्यम से शिक्षा का प्रसार तो अत्याधिक है, किन्तु स्कूलों और कॉलेजों में दी जाने वाली धर्म-निरपेक्ष शिक्षा आज की नवीन पीढ़ी को रजोधर्म के कर्तव्य-पालन करने के विमुख करती जा रही है। धार्मिक भावना एवं विवेक से हीन आज की शिक्षित लड़कियाँ रजोधर्म अवस्था में नाना-प्रकार की फैशन बनाती हैं। क्रीम, पाउडर, स्नो, लिपस्टिक आदि लगा कर शादी-विवाह, कॉलेज, क्लब, बाजार, होटल, सिनेमा, थियेटर एवं सभा-सोसायटी आदि में घूमती रहती हैं। सब प्रकार के मनुष्यों से वार्तालाप करती हैं। सर्व पदार्थो का स्पर्शादि करती हैं, और भी अनेक नहीं करने योग्य कार्य करती हैं इसीलिए आज अधिकतर बल-हीन, नेत्रज्योतिहीन, रोगी, दुर्बल, मूर्ख, कामी, व्यसनी और धर्मभावना से हीन सन्तान पैदा हो रही है, क्योंकि -

- रजोधर्म अवस्था में रुदन करने से गर्भ में आने वाला बालक नेत्रहीन, अंधा, धुंधली या फुली आदि विकारों से युक्त होता है। उसकी आँखों में डोरा हो जाते हैं, पानी बहता रहता है, आँखे,

कञ्जी, मांजरी तथा लाल हो जाती हैं, और भी नेत्र सम्बन्धी अनेक विकार हो जाते हैं।

- रजोधर्म अवस्था में नाखून काटने से बालक के नाखून टेढ़े-मेढ़े, काले, फीके, भद्दे और रुक्ष होते हैं तथा अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं।
- रजोधर्म अवस्था में तेल आदि लगाने से बालक कोढ़ी और खाज-दाद आदि रोगों से पीड़ित रहता है।
- रजोधर्म अवस्था में अञ्जन, सुरमा एवं उबटन आदि लगाने से सन्तान दुराचारी, व्यभिचारी और अनेक दुर्गुणों से युक्त होती है।
- रजोधर्म अवस्था में उच्च-स्वर में बोलने या सुनने से सन्तान बहरी एवं कर्ण सम्बन्धी अन्य अनेक रोगों से पीड़ित उत्पन्न होती है।
- रजोधर्म अवस्था में दिन को सोने से सन्तान प्रमादी, बहुत सोनेवाली एवं ऊँघने वाली होती है।
- रजोधर्म अवस्था में अधिक हँसने से सन्तान के ओष्ठ, तालु, जिह्वा आदि काले पड़ जाते हैं।
- रजोधर्म अवस्था में अधिक बोलने से बच्चा प्रलापी, बकवासी, असत्यभाषी एवं लबार होता है।
- रजोधर्म अवस्था में अधिक परिश्रम करने से उन्मादी एवं पागल सन्तान पैदा होती है।
- रजोधर्म अवस्था में खुले (चौड़े) में सोने से उन्मत्त सन्तान पैदा होती है।
- रजोधर्म अवस्था में अधिक टीम-टाम और श्रङ्गार आदि करने से सन्तान व्यभिचारिणी होती है।

• उन दिनों ब्रह्मचर्य-व्रत का पूर्ण पालन न करने से सन्तान अत्यन्त कामी और निर्लज्ज पैदा होती है, इस कारण रजस्वला अवस्था में इन सर्व अयोग्य दोषों का परित्याग कर तीन दिन पर्यन्त एकान्त स्थान में मौनपूर्वक रहना चाहिए। मन, वचन और काय से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिए। एकान्त स्थान में डाभ के आसन या चटाई आदि पर सोना चाहिए। पलङ्ग, खाट, शय्या, वस्त्र, रुई एवं ऊन आदि के बिस्तरों पर नहीं सोना चाहिए। दिन में एक बार रस छोड़कर भोजन करना चाहिए। दूध, दही, घी आदि नहीं खाना चाहिए और न-गरिष्ठ भोजन करना चाहिए। रजस्वला अवस्था में भोजन पत्तल में करना चाहिए, यदि तांबे या पीतल के बर्तनों में भोजन करें तो उन्हें अग्नि डाल कर शुद्ध कर लेना चाहिए। उन तीन दिनों में पहिने हुए वस्त्र (साड़ी-पेटीकोट आदि) अलग रखने चाहिए, उन वस्त्रोंसे आहारदान एवं पूजन आदि कियाएँ नही करनी चाहिए। तीन दिन पर्यन्त देव, शास्त्र, गुरु कुलदेवता एवं राजा आदि का दर्पण में भी दर्शन नहीं करना चाहिए और नासम्भाषण आदि करना चाहिए। पंच नमस्कार आदि किसी भी मन्त्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए, केवल चिन्तन, मनन एवं स्मरण ही करना चाहिए।

तीन दिन पर्यंत घर की किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं करना चाहिए, क्यों कि स्नान आदि (बाहर) का जल स्पर्श करने से, सिलाई, बुनाई करने से तथा गृह के और भी अन्य कार्य (कूटने, पीसने, कपड़े धोने, अनाज आदि साफ करने, बर्तन माँजने, झाड़ू-बुहारी लगाने तथा पेड़-पौधों में जलादि सिंचन) करने से गृह की ऋद्धि-सिद्धी नष्ट हो जाती है, दरिद्रता का वास हो जाता है, दीनहीन भावना और धर्महीन प्रवृत्तियों के उत्पन्न हो जाने से अनेक प्रकार की आपत्तियाँ विपत्तियाँ घेर लेती हैं। जब रजस्वला स्त्री की छाया

पड़ने मात्र से नेत्ररोगी अन्धा हो जाता है, चेचक हैं, टाइफाईट आदि की बिमारीयाँ भयंकर रुप धारण कर लेती है। बड़ी-पापड़ आदि बेस्वाद और लाल हो जाते हैं, पकवान आदि उत्तम पदार्थ विकृत हो जाते हैं तथा मजीठ आदि का रंग विरङ्ग हो जाता है, तब पदार्थों का स्पर्श आदि करने से तो पवित्रता नष्ट होगी ही।

जो स्त्रियाँ अज्ञान से, प्रमाद से, अहंकार से, परवशता से या दैवयोग से उपर्युक्त कार्य करती हैं अर्थात् रजोधर्म का शास्त्रोक्त रीति से पालन नहीं करती हैं, वे इस भव में रोग, शोक, मोह, दरिद्रता एवं निन्दा आदि को प्राप्त होती हैं और पर-भव में कूकरी, शूकरी आदि पर्यायें धारण करती हुई तिर्यञ्च-पर्यायजन्य अपरिमित कष्ट भोगती है। यदि मनुष्यपर्याय भी प्राप्त हो गई तो चाण्डाल आदि नीच कुल में अथवा भिखारियों के यहाँ उत्पन्न होकर दुःख भोगती हैं। स्त्री पर्याय प्राप्त कर वैधव्य-जन्य और गलित कुष्ठ-रोगादि-जन्य दुःख भोगती हैं।

वर्तमान युग में नवीन (पाश्चात्य) शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियाँ इस रजस्वला अवस्था को अपवित्र नहीं मानते। पक-कर फूट जाने वाले फोड़े, फुन्सियों से जो रक्तस्राव होता है, उसी के समान इसे मान कर न तो वे संयम-व्रत रखते हैं और न भोजनादि बनाने में, स्पर्शास्पर्श में ग्लानि करते हैं, ऐसे नर-नारी यथार्थ में स्पर्श करने योग्य भी नहीं हैं, क्योंकि आगम में रजस्वला स्त्री को प्रथम दिन चाण्डालनी सदृश, दूसरे दिन ब्रह्मघातिन सदृश और तीसरे दिन धोबिन सदृश कहा है।

दूसरी बात यह है कि फोड़ा-फुन्सी स्त्री-पुरुष दोनों के होते हैं। बाल, युवा एवं वृद्ध इन तीनों अवस्थायओं में हो सकते हैं। फोड़ा जहां होता है वहाँ सूजन आ जाती है, उसे पकाने और फोड़ने के लिए औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। मांस उभर

आता है। रक्त के साथ पीप भी आती है और पीप निकल जाने के बाद घाव हो जाता है जो औषधियों के प्रयोग से भरता है। फोड़े आदि होने का कोई ऐसा नियम नहीं है कि वह प्रत्येक माह में ही हो। रजस्वला होने के पूर्व अंगड़ाई आना, पेट, कमर एवं पैरों आदि में दर्द होना, प्रमाद एवं मन की अप्रशस्तता-रुप जो चिह्न उत्पन्न होते हैं, वे फोड़ा-फुन्सी होने से पूर्व नहीं होते।

उपर्युक्त इस सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि स्त्री-पर्याय के साथ रजोधर्म का अविनाभाव सम्बन्ध है। जो स्त्रियाँ रजस्वला नहीं होतीं, वे नियमतः बन्ध्या रहती हैं।

संसारभीरु, दुःखभीरु तथा सुख-शान्ति एवं कल्याणेच्छु नर-नारियों को आगम पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुए सभी काय विवेक-पूर्वक करने चाहिए और स्पर्शास्पर्श (छुआछूत) का ध्यान रखते हुए धर्म की रक्षा करनी चाहिए।

- पंडित श्री दौलतरामजी के क्रियाकोष से साभार

❖❖❖

तम्बाकू से बचें मैथी दाना लें

घुटने मजबूत बनाओ -

जो भी बचपन से मैथी दानों का नित्य प्रति सेवन करेगा, उसके घुटने और शरीर के जोड़ मजबूत बने रहेंगे। सौ वर्ष तक गठिया, लकवा, पोलियों, मधुमेह और उच्च निम्न रक्तचाप नहीं होगा। बिस्कुट, ब्रेड, चावल, दूध, दही, घी से होगा। हमारे पुरखे पशुओं को भी मैथी दाना खिलाते आ रहे हैं।

तम्बाकू का विकल्प -

तम्बाकू सेवन करनेवाले १०० ग्राम मैथी रात को १२ घन्टे नमक के पानी में गलाकर सुबह पानी फेंककर मैथी दानों में थोड़ा नींबू निचोड़कर धूप में सुखा लें। अथवा सेक लें। तम्बाकू खाने की इच्छा होने पर सेवन करें। तम्बाकू छूट जाएगी। उसका स्थान मैथी दाना ले लेगा। मैथी दाना सेवन से नस-नाड़ियों का अवरोध दूर होगा। आंखों की रोशनी, आनन्द उत्साह, स्वास्थ और आयु बढ़ेगी।

कब्ज दूर करने में अद्वितीय -

सुबह-शाम मैथी दाना निगलने से कितना भी कैसा भी कब्ज हो, अवश्य दूर हो जावेगा। सभी रोग कब्ज से होते हैं। मैथी दाना कब्ज को इसलिए दूर करता है कि पेट में जाकर वह फूलता है, आंतो को चिकनी एवं तर कर देता है, साथ ही मल की गुठलियां बनने नहीं देता है। क्योंकि मैथी दाना पचाना नहीं पड़ता है, इसकी लेई नही बनती तथा हमारी आंतो में रपट-रपट कर परिमार्जन कर पेट को निरोग और सक्षम बनाता है।

❖❖❖

सुआ–सूतक व्यवहार

जन्म और मरण दोनों में हर्ष और शोक रुप भावहिंसा तथा बच्चो की नाल आदि भूमी में गाड़ने रुप और शव जलाने रुप द्रव्य-हिंसा होती है। इस हर्ष शोक आदि का उद्वेग प्रायः कुछ दिनों तक विशेष अधिक रहता है, अतः आचार्यों ने उतने सीमित-काल तक के लिए सूआ-सूतक का विधान किया है। (तालिका पीछे देखें)

परिवार में जो भी ज्येष्ठ (दादा-दादी, माता-पिता आदि) परिजन जीवित हो, उसी की पीढ़ी के प्रमाण से समस्त परिवार को सूआ-सूतक पालना होगा। सूआ-सूतक में देव-शास्त्र-गुरु का पूजन, स्पर्शन, मन्दिरजी के वस्त्रों व पात्रों का स्पर्शन तथा पात्रदान आदि निषिद्ध हैं । सूआ-सूतक के काल के बाद ही साधर्मी-जनों को वहाँ भोजन-पान आदि करना चाहिए, उसके पूर्व नहीं । माता-पिता या भाईआदि के आधीन रहने वाली कन्या को भी उस परिवार के समान ही सूआ-सूतक लगता है। अपने कुल का अन्यत्र मरण करे और बारह दिन पूरे होने से पूर्व ज्ञात हो जाए तो शेष दिनों का सूतक मानना चाहिए । यदि दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नानमात्र से शुद्धि है। इसी तरह जन्म का अशौच भी जानना चाहिए ।

किसी विशिष्ट धर्मानुष्ठान (जाप्य या विधानादि प्रारम्भ करने) के पूर्व सकलीकरण होता है। सकलीकरण हो चुकने के बाद यदि परिवार में जन्म-मरण होता है तो उसे सूआ-सूतक नहीं लगेगा । बिम्बप्रतिष्ठा कराने वाले यजमान को नान्दी अभिषेक हो जाने के बाद यदि उनके कुल, वंश या गोत्र में अशौच हो जाता है जो सूआ-सूतक नहीं लगता। किन्तु सकलीकरण विधान के बिना सामान्यरुप से हाथ में मौली बांध लेने मात्र से यदि कोई अपने को शुद्ध मान लेता है तो वह पापार्जन ही करता है।

❖❖❖

जन्म-मरणगत सूआ-सूतक की शुद्धि का काल प्रमाण

अवसर	जन्म	मरण	अवसर	काल प्रमाण
तीसरी पीढ़ी तक	१० दिवस	१२ दिवस	एक माह तक के शिशु का मरण	एक दिवस तक
चौथी पीढ़ी तक	१० दिवस	१० दिवस	आठ वर्ष तक के शिशु का मरण	तीन दिवस तक
पाँचवी पीढ़ी तक	६ दिवस	६ दिवस	तीन मास के गर्भपात का	तीन दिन तक
छटवीं पीढ़ी तक	४ दिवस	४ दिवस	जितने मास का गर्भपात	उतने ही दिन तक
सातवीं पीढ़ी तक	३ दिवस	३ दिवस	प्रसूता माता के	पैतालीस दिवस तक
आठवीं पीढ़ी तक	अहोदिनरात	एक दिनरात	अपने कुल के गृहत्यागी का	एक दिन तक का
नौवमी पीढ़ी तक	२ पहर तक	२ पहर तक	सन्यास मरण होवे तब	
दसवीं पीढ़ी तक	स्नानमात्र	स्नानमात्र	शव लेकर या शवयात्रा में	एक दिन का
अपने घर में दास-दासी या पुत्री के	एक दिन का	एक दिन का	शामिल होने वाले को	
अपने आधीनस्थ गाय, भैंस बकरी	एक दिवस	एक दिवस	जो कोई विषपान या शस्त्र के	छह मास का
के जन्म देने पर			द्वारा जलने से आत्मघात करने	
व्यभिचारी स्त्री-पुरुष के घर में	सदा	सदा	वाले के कुटुंब परिवार को	

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का जीवन परिचय

जन्म	: आश्विन शुक्ल १५, शरद पूर्णिमा संवत् २००३ तदनुसार १० अक्टूबर १९४६, दिन गुरुवार रात्रि ११.३० बजे
स्थान	: सदलगा, जिला-बेलगांव, कर्नाटक प्रान्त
पूर्व नाम	: बाल ब्रह्मचारी विद्याधरजी
पिता	: श्री मलप्पाजी जैन, अष्टगे गोत्र (समाधिस्थ-मुनि श्री मल्लि सागर जी)
माता	: श्रीमती श्रीमति जी (समाधिस्थ-आर्यिका श्रीमती समयमति जी)
भाई	: श्री महावीरप्रसाद (गृहस्थावस्था में) अनन्तनाथ (वर्तमान में मुनिश्री योगसागरजी) शांतिनाथ (वर्तमान में मुनि श्री समय सागर जी)
बहिन	: बा. ब्र. बहिन शान्ताजी बा. ब्र. बहिन सुवर्णा जी
शिक्षा	: ९ वीं कक्षा मराठी से
मातृभाषा	: कन्नड़
अन्य भाषा	: मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत आदि पर अधिकार
ब्रह्मचर्य व्रत	: सन १९६६ आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज
मुनि दीक्षा	: आषाढ़ शुक्ल पंचमी वि.स. २०२५ तदनुसार ३० जून १९६८
दीक्षा गुरु	: महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज
आचार्य पद	: मगसिर कृष्ण दोज वि.सं. २०२९ तदनुसार २२ नवम्बर १९७२
वर्तमान में	: बाल ब्रह्मचारी ८९ मुनि १६५ आर्यिकाएं
दीक्षित शिष्य	: २० करीब ऐलक जी, क्षुल्लकजी बाल ब्रह्मचारी भाई ३०० से अधिक बाल ब्रह्मचारी बहिनें ४०० से उपर
समाधिस्थ	: लगभग २०-२५